

प्रकाशक—
श्री महावीर जयति उत्सव समिति
७२, म तु क्लाय मार्केट,
इंदौर

सम्पादक—
श्री नेमीचंद जैन श्री स्वरूपकुमार गांगेय

प्रबंध सम्पादक—
श्री मिश्रीलाल सोनी

गति-क्रम

‘दर्शन, ज्ञान, चरित्र’—त्रिवेणी	श्री ‘तमघ’ बुवारिया	
त्रिविध-सत्य सगम	महात्मा भगवानदीन	१
गवान महावीर—		
गवान महावीर और उनके	श्री कद्वैयानाल मिश्र ‘प्रभाकर’	६
उत्तराधिकारी	-	६
वर्द्धमान ने कहा		
महावीर और उनका सदेश	श्री यशपाल जैन	१०
‘नमोस्तु ते दद सुखाति निस्पृही	श्री अनूप शर्मा	१६
यह केन्द्र, यह परिधि, यह पृष्ठ!	श्री शिखरचन्द्र जैन	१७
— स्वर्ण द्वीप ?	श्री हरिकृष्ण ‘त्रिनी’	२१
आत्मा का षाया से वियोग, मोक्ष है	श्री ‘मित्र’	२४
१ गीतम ने कहा		२६
२ भारतीय दर्शन की परम्परा	श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव ‘चन्द्र’	२७
१२ आज का विरव महावीर के पथ पर	मुनि श्री मुशीलकुमारजी	३३
१३ भाई निजहित फारज करना (कविता)	श्री दीलतराम	४५
१४ निज समकित सारस होंता ।	श्री मागचन्द	४५
१५ मनुष्य जी रहा है—मनुष्यता मर		
रही है	श्री नैमोचन्द जैन	४६
१६ नागरिकोचित सस्कृति		४८
१७ मसीहा ने कहा		४६
१८ “मैं जैन हूँ”	श्री भानुकुमार जैन	५०
१९ सत विनोबा ने कहा		५२
२० नागवल्लरी (कहानी)	श्री स्वल्पकुमार गागेय	५३
२१ महावीर का परिग्रहवाद बनाम		
माकर्स का साम्यवाद	श्री ‘तन्मघ’ बुवारिया	६२
२२ संस्कृति बनाम रोटी	श्री ‘रमेश’ कुमुमाकर	६६
२३ रुद्रिवाद का आपह छोड़िये	श्री लालनो प्रसाद छेठी	७२
२४ अजीब सवाल (कहानी)	श्री चन्द्रशेखर दुबे	७४
२५ ओ बिहार, शुभ वसुधरे अतिवीर प्रमू-वर	श्री हरिप्रसाद ‘हरि’	७७
२६ सम्पादकीय		७६

न लवेज्ज पुट्ठो सायज,
 न निरट्ठ न मम्मयम् । ।
 अप्पणट्ठा परट्ठा वा,
 उभयस्सन्तरेण वा ॥

अपने लिए, दूसरों के लिए और दोनों
 में से किसी के लिए भी प्रकृतियों पर पापयुक्त,
 निरर्थक तथा मर्मांतक वचन न रहें ।

दिट्ठ मियं असदिद्ध,
 पडिपुण्ण त्रिय जियम् ।
 अयपिरमणुविग्ग,
 भासं निसिर अत्तवम् ॥

आत्मार्थी को इष्ट, परिमित, असदिग्ध,
 परिपूर्ण, स्पष्ट, अनुभूत, वाचासता रहित
 तथा किसी को भी उद्दिग्ध न करने वाला
 वाणी बोलनी चाहिये ।

श्रमण संस्मृति

अप ३

चैत्रशुक्ल त्रयोदशी वी ति सं २४५६

वर्ष ३

‘दर्शन, ज्ञान, चरित्र’-त्रिवेणी,
त्रिविध-सत्य-संगम ।

‘तमय’ सुवारिधा

धरा के नीचे है पाताल, गगन पर बसा हुआ है स्वर्ग,
बीच में अधर मनुज का अहम्,
न जिसका आदि, न जिसका अन्त, चिरन्तन गमन आगमन-क्रम,
इसी को पहते जीवन हम ।

१

पाप का अधर, पुण्य का अधर
बिदगी दो तूलों के बीच,
सिधु-सी दूर मुस्करा रही
निगल जाने को आकुल बीच,
ठहरते बने, न चलना श्य, पथिक के सम्मुख दिग्-दिग् भ्रम !
धरा के नीचे है पाताल, गगन पर बसा हुआ है स्वर्ग,
बीच में अधर मनुज का अहम् ।

२
 फूल हैं पर शूलों से विद्ध,
 सुरभि, पर अवरोधों से युक्त,
 वृत्ति है, किन्तु वृथा के साथ,
 प्राप्ति, पर दोनों कर उमुक्त,
 विरह की श्वासों भरता हुआ जी रहा परिचय मिलन स मम ।
 धरा के नीचे है पाताल, गगन पर बसा हुआ है स्वर्ग,
 बीच में अधर मनुज का अहम् ।

३
 कि आखिर क्यों किसलिए विमूढ
 चेतना का यह अस्थि-समूह,
 कि जिसके भीतर भर अनंत
 ज्ञान के अनगिन चक्रव्यूह ?
 दे चुका जो 'चीनीसों' बार धुनाती ईश्वर को सक्रम ।
 धरा के नीचे है पाताल, गगन पर बसा हुआ है स्वर्ग,
 बीच में अधर मनुज का अहम् ।

४
 तत्त्व का भूला जीवन अर्थ,
 अनर्थों में बलभा विश्वास,
 तभी तो उर्ध्वमुखी चिंतना,
 किन्तु प्रतिफल नीचे ही हास ।
 आत्म की मूल प्रकृति को विवश किये जग-जड़ता का 'गुरुडम' ॥
 धरा के नीचे है पाताल, गगन पर बसा हुआ है स्वर्ग,
 बीच में अधर मनुज का अहम् ।

५
 धरे ओ सपनों के सप्ताह ।
 प्राणियों में सर्वोच्च विधान ॥
 मुक्ति-बधन-दोनों सकल्प,
 कि तू अपने को तो पहचान ॥
 'दर्शन, ज्ञान, चरित्र' त्रिवेणी, त्रिविध सरप-सङ्गम ।
 धरा के नीचे है पाताल, गगन पर बसा हुआ है स्वर्ग
 बीच में अधर मनुज का अहम् ।
 न जिसका आदि, न जिसका अन्त, चिर तन गमन आगमन क्रम ।
 इसी को कहते जीवन हम ।

भगवान महावीर

महात्मा भगवान्‌श्रीन
मधारी चिन्तन,
तत्त्वदर्शी विद्वान्,
लोकप्रिय विचारन

भरा तनानो म भरे घर और भरे-पूरे भडार को छोड़कर चल दन वाने
वधानाम तथा गुण बढमान के वचन के वारे में जो लिगा मिलता है, वह मुने म
बढाकर लिगा गया न जान पढना है, पर अमल म उनक भीतर जलती जाला क
सामने वह बढाकर लिगा भी कम लिगा रह जाता है। राजपाट छोड़कर चल दने
की जब काइ बातरी वजह मिलती ही नहा तन यह मानता हा पढता है कि वह
पैदायशी नायक थे। नायक जोशिले नहीं हुवा करते, गभीर होते हैं। जोश म घर
छोड़ा न मरना है, राजपाट भी, पर सदा ने लिये नहीं। सदा के लिये यह छोड़े
जाने हैं किसी सिद्धान्त के गतिर। सिद्धान्त यों ही तहाँ बन चाया करता गतना
विक्रम होता है। यह निदगी न दिस्ता बन जाया करता है। तमी तो किता
कवि न उनना नद पिङ्गली जिनदगियों की तम्बीर सबन समन रत दी है। हम उन
तस्वारों के पैसल ने भभन में न पढकर यह असनी वान समक लोपी है कि सिद्धान्त
एक नहीं, नद जीवन तन साथ रहकर पूरा हुआ करता है।

हाँ, तो महावीर रामी का घर छोड़ता एन सिद्धान्त भी बात था।

पश्चीम बरस मानने में कोन दिस्त तो नहीं होनी चाहिय, पर खोलह न
होन से पश्चीम तक नम से कम पूरे ती बरस याना एन भा के गर्भ गभालने से बारह
गुना प्यादा, तन हमारे नायक तसा निदगी में सिद्धान्त के गर्भभार को जरूर
गभाने रत। साधारण गर्भ को गभालने में एक मा को नितना सतक रहना पढना
है, उगम नद गुना सतक रहना पढना है सिद्धान्त न गर्भ को गभालने में। इन मान
ने नौ बरस क कुशिया जानने, हाथी पड़ावने जैसे कारणसे ग्राम आदमियाँ न
कानों को भते ही भले लगें, पर उन खोजियों और घग के प्यारों की तनिक भी
रचिकर नहीं हो सते, जो महावीर बाबर मुल्क और दुनिया का कुट्ट मना कर
जाना चाहते हैं। यह तो यह तानना चाहिय कि इन नौ बरसों म उहाँन अपन
कुट्टमियों, रिज्नेदारा, गीकर चारों, पक्षीमा राज्यों को अपन सिद्धान्त समभाने

श्रीर उनके गले उतारो म क्या क्या रोशियों का ? कितनी मफलता मिली ? कितनी कठिनाईयाँ आई ? किस किस का मदद ना ? किस किस ने सहायता रानी की ? घर छोड़ना क्यों जरूरी हुआ ? इत्यादि ।

राजकुमार सिद्धा का मुशील मुदरी, मिदुया और सरा समिनी बसोधरा और प्यारे मनमोहन अर्ध घ बालन गहुल को प्राधी रात सोते छोड़कर चल देता हम यह मानने क लिये मन्नूर करता है कि राजकुमार बद्रमा महावीर स्वामी के रास्ते में पड़ा बड़ी मुसीबतें आई हागी । न मालूम कि किन कठिनाईयाँ सं थे अपन माता पिता, राना राना को घर छोड़ चक देने पर रानी कर सन होंग ? सिद्धार्थ का गन्ता तो बर्द्धमान साफ कर गय थे, पर बर्द्धमान का रास्ता तो भाइ भूतारों से भरा था । उन्होंने उसे किस वन में साफ किया ? और कैसे ? हो गयता है कि सिद्धार्थ प्राणुयाँ का मुफावला करन म निबल रहे हों और फिर वह दिवकतें मुग जान भी चुके हा, पर बर्द्धमान को तो उतास मुफावला करना ही पड़ा । उन्होंने किस तरह मा पर कानू पाया और दिक्कतों को क्यों कर चीता ? यही तो बातें हैं, जो जाननी हैं । लिगी जहाँ न मी मिल, उस अन्ध्या म प्रवेश कर जरूर जानी ना करता है ।

घर के बाद जगल म भी कठिन तपस्या को उतारे मन भते ही अनुपम और शायद अतुकरणीय भी ममभें, पर म तो सोलह में पञ्चीग नरु की तपस्या को ही महत्त्व देता रहूंगा । राम को वही चीज है । उवाना में जान वही फूँकेंगी । महावीर वही पैदा कर गयती है ।

उठती जरानी की तदा नी बाढ म न बहकर अपनी राह ही चलना, पान न डगमगाने देना, रुना अटका घूमना, पर पीढ़ न हटा तपस्या नहा तो और क्या है ? राय लक्ष्मी क मया बाणों से भिदी छाती लिय अस्त्रचना छोडरी क पाणिग्रहण क लिय धीरता के सा न आगे आगे ही चलन जाना, मुफाग भा न दिग्ना तपस्या नहा तो क्या है ? माता पिता के टडे मीटे स्नेह-जल म रान दिा डून रहे, प्यान लगन पर भी होत तक तर न ररा तपस्या नहा तो क्या है ? विमार शून्यता के त्रासुमल्ल से धीनगयता नी साग वाच गून छानी पुला सुनतिया ना प्रेम राग पाश में नोषो नी पूरा छुट न घा पर काम रैन, पाश डीला कर साफ बाहर आजाता तपस्या नहीं तो क्या है ? म और मुग नेमे तो रगी ग्रहुन ग्रभूतपूर और मूर तपस्या का हाल जाना न लिये गिर से पान तर जान को चैते है । वह तपस्या तपस्या थी, मुश्किल थी । ऐनी ही म कि कपन पहन कर पाना म सोता मारो और बिना तपडे भिगेवे चारर आओ ।

हाँ, तो हमारे पैदायशी गायक राजकुमार उदमान मिमें भीगते ही क्या खने हैं, सैफड़ां साधु अपने चारों ओर पांच पांच अंग की ढेरा लगा, "वान में लग पस्या कर रह है। सोचने लगे, यह तप किम शाति न लिये ? दुग्गार पान्ना आदमा गर्मी में यह कमल छोड़ लेना है, पसाना लफर खुवार उतारने के लिये, पेड़े पर लोग गम गम पुल्टिमें बाधते हैं पना कर मलान निमाल फरों न लिये कर यह किम रोम की शाति न लिये प्राग तपकर पसाना बहा रह है ? उत्तर न मिलने पर हृदय टटोला। वह थाप ही तपस्या करता मिला।

एक ओर उस न चल रही है हिमा की आग, जो धू धू करती सारी दुनिया को जला डालने के लिये साता त्रिपुड़ा लपलपानी पढती हा चला जाता है।

उमीसे लगी हु यह दूसरी पेरी। यह मूठ का गरम भूमल है। यह लोगों की आत्माओं का मून डालने पर तुला है।

सौसरा तरा से चोरी की लपटें मिमल मिमल कर व्यापार, राज्य, यहा तक न पुरोहितों तक को अपना लपट म सन की मोशिश कर रहा है।

परिमह का आग न चौथा देग अपने डग न पनोगा डा ह। यह दम को जलानी, एक को सरसाता और फिर बस दस सरसात हुओं को भस्म करती और पेगी एक को गरउती अना नाम म लगा हुई है।

मापी मोटां मुलगाग प्राग का पाचनी अरुण नाम न तरा भातर ही भातर दुगाता चली जाती है। चलनी धीरे धार है, पर मुनैदी न साथ प्राग हो बढ़ती ग रहा है।

यह सब दरफर राजकुमार मुम्गराय, हृदय को आशीवाद दिया और बोले—“बत्स, तरा तपस्या सफल होगा।”

और सोचा लग—आहो, अहिमा के लिये भापा म एक शब्द भा नहीं। हिमा पर लोग इनने मुग्ध ! भाड़े मनीने नी ता मीन रह, पशु स लेफर आदमा तक मिमी न भा डूट तहां। बरा स बचने, व्यापार तरा आर घर-ग्रहमी चलान जैसे कामा म हीने वाला जरूरा पुराद न रूप म हा हिमा नाम नहीं प्रातो। वह तो आनन्द उदान और नल्माण (धम) पैलान न नाम मा कर रहा है। फिर अहिमा के लिये शब्द गढ़ने न न जरूरत है न पुरखन।

अब ?

अब, अब गढ़ेगा एक हथियार—तथा, बन्त तै।

अहिमा से हिमा न मरगी। वह हथियार ही नहीं, बर्दी हो सक्ता है।

और सत्य ! हा ! सत्य और निमल जल को, रुदि के बहा गदे कपड़े धो-

धोकर ताला व पानी स भी ज्यादा गदला बना दिया है ! सत्य का आदर है सही, पर उसका आगत पर बैठा झूठ हा ता पूना पा रहा है । जो यह जाता हा नही चाहता कि वह किसी पूना कर रहा है ? किंग व सवना कर गया है आरों उद श्रीर मदिरा । करदी है उद्धि मर । अहिमा मर चुनी, सत्य गिगन रहा है । अहिमा की बर्दी पहन कर ही सत्य म जान डाला ना मन्ती है सत्य प्रमर है, यह मरन का रहा । उरन का नया नाम सत्य आत्म धम व सिपाही का इवच रहगा । उपच व लिये इससे मजबूत चीन और हो भी क्या मकता है ?

अचोय ! यह और लो ॥ इस लिये भी शब्द नकारद । सत्य ! फिर क्या है, मागे साथ । दूत-दूत कर पट भरत व लिय चोरा-चोरा गहा, पर ताज (ठारु) व्यापार म मर दता ज्यादा लना चोरी चोरी गही, पर धर्म विरुद्ध नहा । दूर दश को बाटुल व वृत्त या चालाकी स दवा बैठा चोरी, पर गणधम इसको धर्म रहता है । चोरा भी उन इतनी पहुँच तब अचोय व लिय शब्द व होना ठारु ही है । परनाह तही अचोय को डाल पनाइ जायगा ।

अपरिमह ! इसको तो कोई जानता ही नहीं । यह सुनना भा तही चाहता । कोई सुनना है तो मूट बोल उठता है, "यह कोई शब्द ही नहीं । "अ" जाइकर गद लिया है । परिग्रह धम है अरे हम हैं परिग्रही, याता धमात्मा । सम्रह करना धम है । सगहनर्त्ता धातव्य नाम वाला है धनात्त धमात्मा होता है । धमात्मा ही गहा, धर्मात्माओं का जान यचाता है । सम्रह व करता पाय है । सम्रह व करने वाला गरीब या निधन कहलाना है । निधन होना यानी मरना । निधन माने मौत । ठारु भा, टोर ॥ समभा । अपरिमह मरणा दवा है । सहन गल व उत्तरगा । पर सिपाही को तो इसका मूट पीना ही होगा । परिग्रह बड़ा है, सिपाही को आग बढ़ा ही न दगी । इस फाटकर सिपाही व पूरे का ताल बनाइ जाय । सिपाही मैटीना, व करीना राह पर बलटन चल सयगा । परिग्रह बड़ी नाल बनकर अपरिमह उन गइ और नाम का चीन होगइ ।

ब्रह्मचय ! अहिमा व मरन पर यह कैसे जा रहा है ? यह ठीक है कि ब्रह्म अमर है और सत्य का तरह ही अमर है, पर इसका जीन भी अहिमा तही मर सकती । अहिमा व मरन पर इसका जाना रहना भद स गाला नहीं । ब्रह्मचय की नाज टटोली जाय । यह भी आग्रिरी माते ल रहा है । वहागामी राना ही नहीं, कोई भा आदमी ब्रह्मचारा ही माना जाता है । वेश्या पर नारी रहा है । गुरु, स्वच्छा का बहुमन्त्र वासरण सिद्ध ही नहीं, धम सिद्ध भी है ।

अच ?

भगवान् पाण्डनाथ व समय व सिपाहियाँ को शायद इसकी जरूरत न रही हो, पर आन तो यह आत्मग्रह व हर एक सिपाही से अपनाया जायगा। स्व स्त्रियाँ नहीं, स्व स्त्री भा नहीं मर्यादा व मानव स्व स्त्री ही ब्रह्मचर्य का ग्रह रहता आया है और रहेगा। त्वाग-स्वाग हालतों में इनसे आगे बढ़ने का छुट रहेगा और वह जरूरी भी है। आत्मधर्म व सिपाहियाँ का इसका लोड × बाया जाय। हृदय व उत्तम उद्गाराँ की रक्षा स्वयं व और निम्न विचारों की रक्षा ब्रह्मचर्य के सिपुर्द।

एसी चर्ची पहन माम मदिरा और अ विवेक पूण मैथुन का कीन सेवन करेगा ? क्या यह माना नर चला जाय ? हरगिण नहीं। सिपाहियों व लिय ग मही, औरों व लिय इसका जरूरत है। टार, अच्छा तो यही आठ। आत्मधर्म व सिपाहियाँ की पदचान।

(१) प्रहिमा (२) स्वयं, (३) अ स्नेय, (४) अ-परिग्रह, (५) ब्रह्मचर्य (६) माभ त्याग, (७) मदिरा-स्वाग, (८) अ विवेक-पूण मैथुन त्याग।

इस सिपाही व हथियार ?

हथियार य है —

(१) आत्मा है और है।

(२) वह और वे अणु अमर, ग्रनादि, अनन्त ह और है।

(३) आत्मा पुरुषार्थ से परमात्मा हो सक्ता है।

और भडा ?

भडा रहगा —

साधन, शन, चारि व।

और धाँ (नारा) ?

नारा है —

मानव मानव एक जानि

परम धर्म प्रेम।

—————

भगवान महावीर और उनके उत्तराधिकारी

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

[हिन्दा म नद निरुध शैली के प्रथम पत्रकार साहित्यवेत्ता]

पुण्या व उत्तराधिकारी होने हैं उनका पुत्र—पौत्र या दत्त और महापुरुषों व उत्तराधिकारी होते हैं उनका अनुयायी। पुण्य करने उत्तराधिकार में छोड़ जाना है पर, नाम और धर्म और महापुरुष छोड़ जाने हैं विश्व का निमाण के करने शुरू पर सत्य और अज्ञान विचारों की जाती।

पुण्या व उत्तराधिकार का परम्परा तो सृष्टि के आरम्भ से अभी तक था का भी लोकोचना आ रहा है—पर महापुरुषों व उत्तराधिकार की परम्परा यह आश्चर्यजनक है कि सृष्टि के आरम्भ से ही भिन्न ही है। उनका उत्तराधिकारी के अन्तर्गत गोविन्द होने रहें हैं जो उनके शुरू में मनुष्य की पृथक् करने में तो अप्रयत्न होने की हैं, उनके विचारों को सचो भर रखने में भी अप्रयत्न ही भिन्न होने हैं उनका अप्रयत्न की समय का कसौटी यह है कि वे यह भूल जाते हैं कि महापुरुष के विचारों को सचो भर रखने का अर्थ होता है हजार हाथों से उठे विश्व में फैलाना।

वे करते हैं कि उन विचारों का जगत् पर लिये कर अनेक स्थानों में रख देने हैं। इस तरह उन विचारों का प्रचार तो रह जाता है पर उन जगत् में का पूजा होना लगता है। य लोग उन महापुरुषों पर भी अपना 'हालमान' लगा देने हैं। इस तरह य महापुरुष विश्व की प्यासी आत्मा के प्रेरण कर रहे कर उन उत्तराधिकारियों का सम्बन्ध ही हो जाने हैं और यह उत्तराधिकारी एक वग का रूप धारण कर का महापुरुष के नाम और विचारों पर वैसा ही कर्त्तव्य कर लेने हैं जैसा आरम्भ में उन अज्ञान विचारों में किया था। सत्य में धर्मों के निमाण का यही इतिहास है और यही महापुरुषों के उत्तराधिकार का स्वरूप है।

इस स्वरूप का एक और रूप है, जो सम्भवतः विश्व की सबसे दुर्लभ घटना है कुछ लोग हैं जो शमादारा व साथ महापुरुष के शुरू में सत्त्वों को पूरा करने में रात दिन अपनी प्राणशक्ति दते रहते हैं और अपने मृत का काम

खेलते रहते हैं पर उत्तराधिकारियों का वर्ग इन्हें अपने में शुमार नहीं करना स्वयंपूर्वक इन्हें अपना मे दूख रगता है। क्योंकि ये उन पुस्तकों की पूजा करने में विश्वास नहीं रखते और मन्त्रपुस्तकों पर 'हालमार्क' (उत्तरी कर) लगाने का विरोध करते हैं।

विश्वरूपि श्री रानीद्रनाथ ठाकुर की एक कहानी इस विषय में बड़ा मर्मस्पर्शी प्रकाश डालती है। एक धनकुत्र के बड़े पुत्र के बाद पुत्र उत्पन्न हुआ। वह एक दिन पालने में सो रहा था कि एक निम्न-वर्ण भीतर मागने वहाँ आई। भिगारिन का गोद में भी उतना ही बड़ा पुत्र था—यही कोई १०-१२ दिन का न था। भिगारिन को एक लकड़हूँ और उन पुत्रों से अपना पुत्र पालन में मुता दिया और सेठ के पुत्र को ग्राम में हुन चली गई। दोनों बड़े हुए। धनकुत्र का पुत्र भीम भागा करता, भिगारिन के बेटा धनकुत्र की गता पर बैठता। धनकुत्र मर गया और बड़ा भद्रभोज हुआ। हम ब्रह्मभोज में धनकुत्र का सच्चा उत्तराधिकारी, पर धनकुत्र के पुत्र का यह बेटा भी पुत्र आया। वह ब्राह्मण तो न था! धनकुत्र के पुत्र भिगारिन के पालन में पुत्र ने उसे दगा और धरिया कर, धनकुत्र के पुत्र निमत दिया। धनकुत्र का सच्चा पुत्र धनकुत्र के हाथ पर टूट दिया गया, उन हाथों, जो श्राव इमी द्वारा पर मात मागते, निम्न-वर्ण पुत्रों के हाथों में पड़े थे। हम इस कृपा को न मम का पल भर में मित्र प्रत्यक्ष कर सकें तो नराह उठें।

मन्त्राधीन भगवान भी विश्वरूपि महापुण्य थे। प्रश्न है कि क्या उत्तराधिकारी मौन है? लोगों कण्ट कर्णों को नैवार है कि इन! वह है किने पाग महावीर की मूर्तिया है, पुस्तक है और विहाल श्रमता एक न बना निगा है, पर मरे प्रश्न की दिशा दूसरी है। म पृथका हूँ मानन भूतान न पालनिक उत्तराधिकारी मौन है?

प्रश्न का पूरा एक और प्रश्न है भगवान की न होइ गय है, किने उत्तराधिकारी का यह ग्यो न है? हम ग्यो न ही इति है न अपने प्रश्न का उत्तर मिलेगा।

भगवान के छोले धा का नाम है विरोह। तमाक विरोह की कृपा के एक आदि उद्गम का नाम है महावीर। है स्वयं और मठ

भद हो, प्राणिमात्र की जीवन का समान अधिकार हो, तारी भिक्षा के रूप में नहीं अधिकार के रूप में मान ग्रहण करें, हम तिनमें भी श्रौर जीते भा दें, हम स्तनत्रता से सोचें और दूसरों को भी सोचने दें, यह मान्यता का विधान है, पर कुछ लोगों ने मान, धन और अधिकार की घपीला बना लिया, तारी को पद दलित के प्रतिष्ठित बन्दी का रूप दे दिया, पशुआ को जीवन के अधिकार से वंचित कर दिया और दूसरों से स्तनत्रता पूर्वक सोचने विचारना का भी अधिकार छीन लिया। इससे भी मधुर यह हुआ कि समान-व्यवस्था और शासन ने हम दुःखवस्था की रक्षा का भार अपने गिर ल लिया और हम प्रकार हम प्रामाणिकता दे दी।

इसी प्रामाणिकता के विरुद्ध भगवान् महावीर ने तिनको का भन्डा मारनाय आदेश में पहला बार पहराया। यह भन्टा तिसी राधा के हाथों में न था, एक सत ती श्कर के हाथों में था। पला यह एक मौलिक विद्रोह था—इस विद्रोह के पीछे महावीर की जीवन साधना थी—तिसी राज्य की चतुरगिणी सना नहीं ?

यह विद्रोह अभी अपूर्ण है—त्रव तन नद सचुति—नद समाज व्यवस्था की स्थापना न हो जाय, यह अपूर्ण रहेगा। यह विद्रोह अपूर्ण है, पर सदैव प्रगतिशाल है। ऊर्ध्वर नैस रुनों, रदास जैसे भक्तों ने हम अग्नि-ज्वाला की प्र-पलित रखा है, भारत ने हम नया पथ दिगाया है, सनित ने उस जमान पर उनागा है और गांधी ने समर्व हाथों में इस विद्रोह की पताग रही है।

तो फिर ? तो फिर क्या प्रश्न भी स्पष्ट है और उत्तर उत्तर भा। भगवान् तिनोह ने आदि सोए थे, यही वे अपनी जगोहर में छोड़ गये हैं। तिनोह में भी लोग समानता, स्तनत्रत और सत्मानता का युद्ध लड़ रहे हैं, वे तिसी दश में जन्म हों, पले हों, वे तिसी भाषा में बोलने हों, उनका नाम तिसी भी वम के रजिटर में हों, वे ही भगवान् महावीर के सच्च उत्तराधिकारी ?।

वर्द्धमान ने कहा—

अजम्बूथ सन्त्रो सव दिस्स, पाणो विवायण ।

न ह्ये पाणियो पाणो, भयवेरात्रो उवरण ॥ ।

भय और वैश से गिहृत साधक, चीटा के प्रति मोह ममता रखने वाले सब प्राणियों को सर्वत्र अपना हा आत्मा के समान चारु उाकी कभी भी हिंसा न कर ।

‘दिट्ठ मिय असदिद्ध, पडिपुराण विय जिय ।

अयंपिरमणुचिग्ग, भास निसिर अत्तव ॥

आत्मार्थ साधक को दृष्ट (भद्र), परिमित, अक्षदिग्ध, परिपूर्ण, स्पष्ट, अनुभूत, वाचालता रहित, और किसी को भी उद्विग्न न करने वाली वाणी बोलनी चाहिये ।

“चित्तमतमचित्त वा, अप्प वा जइ वा घुँ ।

दत्त सोहणमित्त पि, उग्गह से अजाइया ॥

सचेता पदार्थ हो या अचेतन, अलाम्बन पदार्थ हो या बहुमूल्य, और तो स्या, दात पुरेदने की शक्ति भी अविम गृह्य के अधिकार में हो उसका आश लिख बिना पूर्ण समर्पण साधक न ही स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरों को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करते हैं, और न ग्रहण करने वालों का अनुमोदन ही करने हैं ।

“दुज्जण वामभोगेय, निच्चयो परिवजण ।

सकट्ठाणामि सग्गणि, जजेज्जा पशिहाणव ॥

स्थिर चित्त भित्तु, दुर्चय, काम भोगों को श्रेयसा के लिए छोड़ न । इतना ही नहीं, चित्तमे ब्रह्मचर्य में तनिके भा क्षति पहुँचने की सम्भारना हो, न सब शान्त्तानों का भी उसे परित्याग कर देना चाहिए ।

“लोहस्सेम अणुत्पासो, मने अणुयराववि ।

जे सिया सतिहीकामे गिही, पवरइण्ण से ॥

समृद्ध करना, यह अक्षर रहने वाले-लोभ की-भणक-हे । अतएव ई माता है कि जो माधु मयात्मा विन्दु कुत्र समरु करना चाहता है, वह गृहस्थ है—माधु नयां है ।

महावीर और उनका संदेश

इस घृणी पर जब जब धम की हानि होती है, कोई न-को महापुरुष उत्पन्न हो जाता है और वह भाव के विश्वास, आस्था और निष्ठा को नवीन स्फूर्ति और नया बल प्रदान करता है। महावीर ऐसे ही महापुरुषों में से एक थे। उन्होंने किताब नथ धर्म की प्रतिष्ठा नहीं की बल्कि मानव और मानव समुदाय के स्वयं विश्वास को पुनर्स्थापित किया।

भारत एक विशाल भूखण्ड है। उसमें अनेक जातियाँ बसती हैं, विनय अलग-अलग धर्म हैं और अलग-अलग धार्मिक मान्यताएँ हैं। प्राचीन काल में जब अथ जाति यहाँ आते तब एक जगह जमना नहीं बैठा, विभिन्न स्थानों में फैल गई। उनकी साम्राज्य बनी और क्षेत्र-काल के अनुसार उनमें मन मतान्तरों में भा परिवर्तन होगया। धरे धरे वे एक दूसरी से दूर पत्थरी गई और कालान्तर में उनमें मना प्रहों के कारण उनमें धामन अतहिष्णुता पैदा होगया। इतना ही नहीं, उनमें धम का फल रूप और मूल्य मान्यताएँ भी आने चनकर बदल गई। वे एक ईश्वर के उपा

वशपाल जैन

भाषी निराकर, कहानी लेखक
सम्पादक 'नीवा साहित्य,

मरुत लेखित प्रकृति की मिन्य शक्तियों में ईश्वर के मिन्य मिन्य रूपों की रचना करने दयता के रूप में उनकी पूजा करते थे पर एक समय आया कि वे कियाकाओं की हा मोद का माधन मानन लगे। ईश्वर की उपासना के लिए उन्होंने विन यजों की सृष्टि की थी, उनमें हजारों पशुओं की यजि देनेवाल मानव माव के ताते वे सब पहले एक थे। मुभीने की दृष्टि से उन्होंने कार्य विभाजन कर लिया था लेकिन अब वह विभाजन वश के रूप में परिवर्तित होगया और एक वश दूसरे में अपने को पृथक ही नहीं, उच्च भी मानने लगा। शत्रु और दायों का एक ऐसा वग बन गया, चित्ते मानवता के सामान्य अधिकारा से भी उचित होना पडा। आदमी आदमी के बीच दूरी आभाई और प्रम तथा भ्रातृ भाव के स्थापन पर

दर्शनाद्भेद आदि कथायां ने घर बना लिया।

ऐसा विधम परिस्थिति में शत्रुगण के राजघरने में यद्दमान नामका बालक पैदा हुआ। वह असाधारण बालक था, पर उसका बचपन बहुत कुछ पैसा ही बीता, जैसा अन्य बालकों का बीता करता है। एक बीज उसमें बचपन से ही विद्यमान था, और ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया उस बीज की जड़ जमती गई। बाल्यावस्था पार होने पर उसका विवाह हुआ उसे यशोदा नामकी बहुत ही सुशील पत्नी मिली, लेकिन उसका मन भोग विलास या राजपाट के वैभव में नहीं रमा। अदर अदर बात जो पाप रहा था। और जय घर के लोग और राज्य की प्रजा यह आशा कर रही थी कि कुछ दिन बाद राजपाट का भार उसके कंधों पर आ जायगा उसने कुछ स समय लात मारा और माना पिता के दहावसान के दो वर्ष बाद भरा जमाना में घर से निष्कल गया। तीस वर्ष का अवस्था, भरा पूरा घर, सुशील पत्नी, लेकिन कुछ भी उसे नहीं रोफ मना। बारह वर्ष तक उसने धोर तपस्या की। काया मूल्य गई, वस्त्र चीरुण होकर गट्ट होगये, जंगली पशु-पक्षियों ने ठम सताया, लोगों ने मारा-पाटा

तात्पर्य यह कि अनेक विधम धाधाएँ उसका मन म आइ, उपसर्ग हुए लेकिन वह डिगा नहा। अपनी साधना में लान रहा।

तरहवें वर्ष उनकी तपस्या सफल हुई। उन्हें 'कैवली' पद प्राप्त हुआ। और वह दुनिया के सुख दुःख, भोग विलास, मोह माया आदि से ऊपर उठ गये। वह वर्द्धमान से महाधीर बन गये। अन्य वह सिद्धार्थ और त्रिशला के बन्धु शत्रुगण के राजघरने के राजकुमार नहीं, बल्कि मानवता के मागदशक बन गये।

महावीर ने जैन धर्म का स्थापना नहीं की। वह धर्म तो बहुत पहले स्थापित हो चुका था और महाधीर से पूरे २३ तीर्थंकर और हे सुख के महावीर ने तो उस पुराने धर्म की बल प्रदान किया। उसमें जो बुराईया आगई थी, वे दूर की। ज्ञान प्राप्त होने ही चारों ओर से लोग आकर्षित होकर उनका पास आने लगे और थोड़े ही समय में उनका अनुयायियों की संख्या लाखों हो गई।

प्रश्न उठ सकता है कि जबाना के आनंद और राजपाट के सुख को तिलाजलि दफर उन्हें साधना के कठोर माग पर चलने की क्या

आवश्यकता थी ? 'प्रय' का माग
जब सामने खुला था तो 'श्रेय' का
मार्ग का अपलम्बन करने की क्या
पड़ी थी ? अपना बड़ा सम्पत्ति में
स भर भर यैली दान करके ये
गरागे का नष्ट निवारण कर सकते
थे तो उन्होंने उस तुलभ और
सुहृद्भाव अचर को क्या खोया ?
इतने बड़े राज्य का पाने का अधिकार
होने हुए भी, उधर से मुँह मोड़कर
स्वेच्छा से यह क्यों अचिन्त बने ?

आज के युग में इन प्रश्नों का
उत्तर पाना बड़ा कठिन है लेकिन
युग की दृष्टि से न दगडर महावीर
की दृष्टि से देखें तो उत्तर स्पष्ट है
आर वह यह कि असला सुग और
सुख-शांति वैभव में नहीं है, त्याग
में है और जावन को इतावना
भीतिकर उपलब्धियाँ में नहीं आत्मा
को शक्ति में है। महावीर को जैसे
ही बड़े ज्ञान हुआ कि लार्गा-करोड़ों
की सम्पत्ति होने हुए भी निष्करी
आत्मा टुबल है जो कपाया का दाग
है वह अमीर नहीं है और नौवा
पान न होत हुए भी निष्करी आत्मा
बलिष्ठ है वह साम्ब में अमीर है।
उन्हें अपना सारा एश्यय छोड़न
और आत्मा की उन्नति में लीन
होने ननिग भी दर न लगी, द्विचक्र
तो भला होता ही क्या था ?

दूमरा सवाल यह होता है कि
महावीर का वाणी में, उनके शब्दों
में इतना जादू कहाँ से आ गया ?
कि—लाग्य गर नारी उनके सप
में आ मिल ? इसका उत्तर भी
साफ है और यह यह कि उन्होंने
अपन मुँह से कभी एक भी एगा
शब्द नहीं निकाला जिसका प्राव
रण उन्होंने अपने जान में न किया
हो। अहिंसा की बात कही, लेकिन
तब तब उन्होंने स्वयं मन बचन
आर वाय से हिंसा को छोड़ दिया।
अरिग्रह की बात तब मुँह से
निकाली तब स्वयं अचिन्त बन
गए। सत्य का प्रतिपादन किया
तब तब सत्य की पूण प्रतिष्ठा अपने
हृदय में करली। ब्रह्मचर्य की बात
तब मुँह से बाहर निकला जब
स्वयं पूण सयमी ब्रह्मचारी बन गए
उनकी जगता और करती में तनिक
भा भद न रहा और यही उनकी
वाण्या की शक्ति का रहस्य था।
बारह वष का दुषपसाधना में
उन्होंने यही तो किया था।

महावीर ने स्वयं अचिन्त नीर
मान्य और उसके जीवन की
पावनता पर दिया है। क्यों ?
इसलिए कि इन दुनिया कि मूलभूत
इनाइ मान्य है। यदि आदमी
अच्छा है तो तसार अच्छा हुए
बिना नहीं रहगा। यदि आदमी

पुरा है तो रोड़ या शनि इन दुनिया की अच्छा नहीं बना सकता।

महावीर ने अपने समय की भयावह स्थिति को रखा । ताना प्रकार की बुराईया न सन्धा समाप्त जर्जर हो गया था । आदमी इतना स्वायत्तपरायण श्राव भोग निष्ठ बन गया था कि उस अपने स्वाध श्राव भोग व आगे श्राव बुद्ध दीयता ही नहीं था । यह मटकना था श्राव दुभाग्य से उस मटकने को हो वह सच्चा आनन्द समझ बैठा था । यह बचैत था, लज्जिन उसे इतनी चेतना ही न रही था कि यह समझ कि यह बचैत है ।

महावीर ने मानव को यह दिशा दी । उन्होंने कहा कि रोड़ या व्यक्ति मूलतः बुरा नहीं है श्राव यदि वह गलती से बुरे भाग पर चला गया है तो वह उस भाग को छोड़ कर एक दिन अच्छा भी बन सकता है । यह वह समते थे कि जो एक बार बिगड़ गया उसका सुधार असम्भव है, लेकिन उस दशा में शायद उन्हें सारी दुनिया को हाँ खो देना पड़ता श्राव फिर सत्य का वह पुनारी जानता था कि व्यक्ति मूल में हाँ गलत रास्ते पर जाता है समझ-बूझ कर अनुचित भाग पर जाने वाला करोड़ों में एक भी मुश्किल से मिलेगा ।

मानवता व लिए उनका यह सदृश श्रावा की एक अमृत किरण लेकर आया । उसने बुराईया व दलदल में फसे लोगों को उसमें से बाहर निकलने का एक प्रेरक शक्ति प्रदान की । उनके हर शब्दा ने उसे बड़ा स्थिति प्रदाता का—‘जिवेरी पुण्य जान मया अनजान में कोई प्रथम कृत्य कर बैठ तो अपनी आत्मा को शीघ्र उससे हटाल श्राव फिर दूसरी बार वैसा न करे ।’ फिर उन्होंने कहा कि मानव व अदर असनी शक्ति अहिंसा, सत्य, अस्तय, अपरिग्रह श्राव ब्रह्मचय इन पाँच धर्मा व पालन से हाँ उत्पन्न हो सकता है । जो यहस्य है, जिता पर परिवार या मार है, वे यदि सूक्ष्म रूप में इन धर्मों का पालन नहीं कर सकते तो स्थूलरूप से ही करें, श्राव तानभूम कर हिंसा न करें, भूट न वोलें चोरी न करें, परिग्रह न रखें श्राव असयमा न बनें । कभी जान मया अनजान ऐसा हो भी जाय तो निराश न हाँ बलिक इन धर्मा व पालन का प्रयत्न करें ।

उन्होंने यह भी कहा कि— बुराईया का मूल कारण यह है कि आदमी अपनी श्राव देव कर दूसरों की श्राव देखता है । इसलिए अपनी दृष्टि को अंतमुग्गी करके अपने दोषों को देखो श्राव उन्हें

दूर करने की चेष्टियाँ करो—'अपने आपको जानो। अपने आपको जानना हा वास्तव में दुःख है।' य महावार क शब्द य।

ममत्ता में कितने धर्म हैं उसकी मूल मान्यता प्रायः यही है। मरे इतने में आज तक कई भी ऐसा धर्म नहीं आया जो यह कहता हो कि मनुष्य पुरा बना रह तब भी ममत्ता अन्तः हो सकता है या कि मनुष्य भाग लित रह कर उन्मत्ता बन सकता है। यान सा धर्म है जो यह कह सकता है कि प्रेरण म धैर्य शक्ति होता है प्रीर हिंसा से हिंसा।

सवाल उठता है कि महावीर का संदेश इतना व्यापक कैसे था? इसलिए कि उ होंने अपने को आर अर्पणता का जो किंसा धर्म प्रिशाप तक सामिन नहा रक्खा। उनक लिए न कोई उच्च वर्ण का था न निम्न वर्ण का। मानव मानव के नाते भव एक य। इसीलिए उनका संदेश सारी मानव जाति क लिए था और है। दूसरे उ होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जिसे सब आसानी से प्रयोग कर सकत थे।

उनका भाग निश्चय हा शारा शकर की घोंटा पर चढ़ने क समान है। वह भोग की अनुमति नहीं

देता, त्याग का आग्रह रक्खा है वह इत्यादि को प्रोत्साहन नहीं देता, धर्म का स्थापना करता है, वह महत्वाचीता को अस्वीकार नहीं देता, आत्ममयम का पाठ पढ़ता है। एसा भाग सरल कैस हो सकता है लेकिन निम आदमी जो महावीर क वक्तव्य इन राजभाग पर चलने का एक बार चर्चा लग गया कि फिर और कोई भी भाग उम अन्तः नहीं लगेगा।

मरे लिए धर्म का मर्म यही है। दुर्भाग्य से आज धर्म की परिभाषा आज कुछ और ही होगी है। यीरों का बात क्या करें महावीर पर अपना एकाधिकार रखने वाले उाये अनुयायी भी उनक भाग को भूल बैठे हैं। उ होंने समझाया जो यत्न जम्ह रक्खा है, धर्म की आत्मा को छाड़ दिया है और समझ रहा है कि यत्न कृद्धियों का पालन करके वे धर्म साधन कर रहे हैं।

इसका बहुत बड़ा कारण तो मानव की स्वयं का दुबलता है। लेकिन एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि पश्चिमी सभ्यता जोरों से लोगों पर अपना प्रभाव डाल रही है। यह सभ्यता मुख्यतः भौतिक है और इसीलिए उसने आज के मानव और आज क समाज को भौतिकता का

प्रेमी बना दिया है। वह स्थूल वस्तु को चाहते लगा है और उा सूक्ष्म तत्वों का श्रोर से उदासीन होता जा रहा है, जो उसने मौलिक आनन्द में सहायक नहीं होते, उल्टे उसमें फलल डालते हैं।

पर इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है। उपाय आग मन से पूर्ण रात्रि का अधकार बहुत ही गहन हो उठता है। उस अधकार को चीरकर ही प्रकाश की

किरण फूटती है। जबतक मानव निराश नहीं हो जाता, जबतक मानवता का एक क्षण भी उसमें शेष रहता है जबतक निराश होने का कोई कारण नहीं है। हमें इस ज्ञान को नहीं भूलना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति मूलतः शुभ नहीं है और जिस दिन उसे अपने दोषों का मान हो जायगा, वह उनसे मुक्त होने और आगे उाकी पुनरावृत्ति न करने का प्रयत्न अवश्य करेगा।

जहाँ तक हो सकेगा—

“व्रत लेना दुर्बलता का परिचायक नहीं, वह बल का ही परिचायक है। कोई कार्य यदि उचित है तो उस करना ही चाहिये, इसका नाम व्रत है और हमी में शक्ति है। किन्तु “जहाँ तक हो सकेगा” इस तरह की बात तो करता है वह अपनी दुर्बलता या अभिमान का परिचायक है। शुभ मन्त्र ने सम्बन्ध में “जहाँ तक हो सकेगा” इस तरह का वाक्य विषय की तरह है। “जहाँ तक हो सकेगा, मन्त्र का पालन करूंगा।” इस प्रकार के वाक्य का कोश अध नहीं होता।

—महात्मा गांधी

अमृत को विष न बनाइये—

मनुष्य को चाहिये कि वह धर्म की दम, पृष्ठा, विवाद और ग्लानि का कारण न बनावे। जो वस्तु अमृत बनाने के लिये है उसको विष नहीं बना डालना चाहिये। हम उस भँस के समान नहीं जाना चाहिये जो साफ पानी के तालाब में जाकर उसको मग्न जालना है, और बदलावर उसमें आना-दानुभव करता है।

—चन्द्रवर्ती राजगोपालाचार्य

‘ नमोस्तु ते, देह-सुखाति निस्पृही ’

“सदा अहिंसा रखना स्व धर्म है, अदत्त लेना अपना न कर्म है, मनुष्य जो उत्तम आत्म-निस्पृही उहें अविरवास सदा अधर्म में ।

“न मार्ग पाथेय बिना सुगम है, सुधर्म साथी पर लोक का सदा, न फाल जाके फिरता कदापि टै, अधर्म का पादप पुष्प-हीन है ।

‘ सभी तस स्थानर प्राणि मिश्र के अन्ध ही हैं न, अदृढनीय हैं, विनीत होते जय दृढ-नाम से, कदापि प्राणी मरना न चाहते ।

“विपक्ष में हो सम भाव पक्ष में, तथा गृपा भाषण में न प्रीति हो, न सत्य सा है तप और विश्व में कहा गया है, ऋत ब्रह्म-रूप है ।

“मनुष्य अस्मैय विचार उक्त जो वही तृती आदरणीय है सदा, न पालना जो जन ब्रह्मचर्य है उसे नहीं आस्पद मोक्ष का मिला ।

‘ परिग्रही है वह जो पदाव पे, ममत्व मूर्खा रखता सदैव है, धरित्रि में रामहणीय एक ही सु वस्तु है निर्मम-भाव-रूपना ।

“नमोस्तु ते, देह सुखाति निस्पृही
नमोस्तुते मोक्ष-स्मार्थ-विग्रही,
नमोस्तुते हे अपरिग्रही, प्रभो !
नमोस्तुते भक्त अनुग्रही, त्रिभो !

—ब्रह्मा । (श्री अनूप शर्मा) से साभार

यह केन्द्र—

यह परिधि—

यह वृत्त—

शिवरघद जैन

जब म नदन व बार म सोचना हूँ, तब बरबस मुझे हसा आ ही जाती है, चाहे मैं कितना भी अपने को रोझने का प्रयत्न क्यों न करूँ ! सारी दुनिया उस पर हसी है, और मैं भी उस पर हसूँ, यह प्रच्छा नहीं लगता। पर अच्छा लगे या बुरा, हसी तो हसा ही है, उसे रोझना किसी व पशु की बात नहीं।

मैंन बड़े बग अपने मित्रों को समझाने का प्रयत्न किया है। 'हम मित्र रह हूँ। म उस प्रचयन से जानता रहा हूँ। उसका मदा मैंन पल लिया है।' पर मित्रा की मैं नहा समझा पाया हूँ। इगलिये जन म आज आपको उस समझाना चाहता हूँ और आप उस न समझ पायें, और फिर भी उस, तब मैं बुरा नहीं मानूँगा। क्या म आपको उसे समझाना चाहता हूँ, यज्ञ तो म भा नहीं जानता, पर कोई मुझसे कहता है कि म आपकी समझाऊँ। इसलिये, यज्ञ, इसीलिये उसे आपकी समझाना चाहता हूँ। म ही समझाना चाहता हूँ क्योंकि म उसका प्रभिन रहता

मौन साधक, लेखक, कहानीकार

*, और यगवि मैं स्वयं उस हसा हूँ, तो भी मैंन सदा उस पर हसूँ लिया है।

बचपन से लेकर उसके जीवन अन्तिम क्षण तक मैं उससे प्रभावित रहा। साथ रहते उसकी आत्मा रूप मुझे गाफ दिग्राई देते थे, और उठे दिग्राई देते थे, ठीक नैलचित्र व समान। अल्पकाल दुर्गति से समान करने एकीव आत्मा में मुझे धन और रत्न के हान महने भगवत का दिवाइ देते थे। उसका वह सजीव चित्र सच्चा गया ह। इस मन्वे चित्र में से जैसे धीरे धीरे उम्मी रूप देखायें गइ हूँ, यह धुधना ही गया है, मुझे मालूम पटना है। अब म मानस हा मैं म उसे ज्ञेय पाता हूँ। इसीलिये कुछ उल्टी सी क्रिया है। वह मुझे अत साफ साफ बतलाता है।

मैं जैसे गमभाऊं आपको, अब वह मेरे अधिः टिकट है। पहले वह मुझ पर मुझला उठता था, नाराज हो जाता था, अभी-कभी महिा तक बोलता था। और फिर किसी दिन हम मिला की ध्मातुल हो जान, मिल जात, घुल मिल जाने। जीवन म एत अबगर अनक आय गये। परन्तु अब वह मदा हंमता रहता है, दुनिया पर हंमता रहता है। दुनिया उस भूल गई है। वह अब उस पर नहीं हंम पाता है। अब नो वह ही गव पर हंमता है। हंमता है बड़ा ही गम्भारता से, निडर होकर। दुनिया ने उसे मूल गमभा। अब वह दुनिया को मग गमभता है। इगलिय उस की दुनिया ने सम्बन्ध का घात नव मरी गमभ म नहीं आता तब मुझे अपने इग दुराव पर मुझलाइट होती है। कभी कभी म अधार हो उठता है कि मैं भी उसम उमाके साथ होकर इस तरह दण मजता, तो क्या ही अच्छा होता।

पर, जा म है, जो आप है, जो वह है, हम एम ही गद हैं, एम ही गदंग इगलिय हम आकाक्षा और प्रतीक्षाओं से परे पहुँचकर गूल दले और समझ-सौर लेना चाहिये।

पहले मैं आपको उसने पागल पा या मूर्खता की ताजी बात ही सुनाता हूँ। उसकी मगखान अबस्था थी। हम मव उसने जीवत म गिगश हो चुक था। डॉ दयाल आय थे और कह तुम थे, 'तदा व वचना की अब कोई आशा नहीं, हम अब औपधि न कर उम मुग शानि म हां परलाक यात्रा कगी नना चाहिये।' हम लोगां और उमके परिार क लिय वह कोरे अप्रत्या शित बात न थी। वह भी जानता था कि लोग और डाक्टर क्या रहते हैं। पर, उमन कभी अपने को बचाने के लिये नहीं कहा। और हमसे बराबर कहता रहा, 'मं मरू गा नहीं। यदि डॉ० दयाल क्या, मवय धमराग भी कहे कि म मर' रहा हूँ तो म उनकी कथनी को असत्य सिद्ध कर दूंगा।'

मरग से पहले वह मग प्रमन्न रहा। उमने कभी इमारी भवा सहायता की आकाक्षा या अपला नहीं का। कभी-कभी पड़े पड़े ही वह इतने जोरग स हंस दता कि हम उसम उमादधरत या सतिपात मस्त होत का सदह होता, पर नव हम आने मग गावधान और मचेत पाते।

हई नव नद मव्यकी, यकीनी या मित्र आता और कहता 'नदा

घबराओ नहीं, तुम शाप ही अच्छे हो जाओगे। अपने बाल बच्चों की चिन्ता मत करना नदन हम मर है किसलिये ? रम्मु-छम्मु तो हमारा ही पुत्र हैं।” उनकी हम सहानुभूति पर भी उस हसी आ जाती। वह अपने को रोक नहा पाता। वह रिल खिला उठता और कहता “दादा मच तो कहत हो, म अछा तो हूँ। घबराता कहौं हूँ। और, आपक समान पड़ोसी तो दुनिया का पीर पर भी नहीं मिलेंगे। इसीलिये ना म निश्चिन्त हूँ। बच्च तो आपक ही हैं। आपक समान दयालु, पुण्यात्मा और सहृदय लोग म यल पर ही तो मनुयुग बरस रहा है। आपकी गहरा सहानुभूति म लिये आभार मानता हूँ।”

एसा कुछ वह कहता और म मुनत। वह हमता, मुस्कराना और म खोभते। उह बाँने सुमनी। वे अन्यमनस्क होकर लौट जात आर फिर प्राय आते म नाम न लत। उनक बच्चे जब रम्मु-छम्मु को पा न, ढकलत, मिठाईया बनाकर मुह बिचकात तब जैसे उह उनक मचोटा स भर मन को भारी प्रसन्नता होत। वे तर्क पर रम्मु-छम्मु का दोषी और अपनी सतानों को निर्दोष पात। रुग्णावस्था म य प्रसंग रम्मु-छम्मु के पिता नदन क पास अवश्य पहुँचने।

और उठने में भी असमर्थ नदन उह प्रम से उठाना, पाम बैठाना, प्रबोध करना और फिर म्मनन मेन मता। उनक ज्ञान पर मुह ढक कर रोता, कराहता, मोचता राम रोष गुण दोष मयी दुनिया की विडम्बना पर। मोचता, क्या मचमुच दुनिया अमत्य है ? क्या हमम अमत्य ही मत्य है ? नब लोग क्या मयय और मल का बाँने करत हैं। क्या आदश क चरणां पर मिर मुकारर उमकी अग्रहलना करे हैं। क्या मययडा रिक्ता को राजरानी बनाकर उमका पृता करत हैं ? वह मोचता मय म लागों को चिद् मया है। क्यों क जानधुम्कार, अमय मे मय मान कर ममनी अचना म ही निरन्तर लान रहत हैं। इस तरह प्रतिदिन को न मई पुनारा उमक पाम आ हा जाता स्प रग, आहृति और मयनों म वह भिन्न होता, पर नदन म मसोटा पर वह अपना चिर परिचित वही होता, जा प्रतिदिन, प्रतिक्षण उमम मिलन आता रहा है। इसालिये अपने चिरपरिचित मित्र के मिलन पर बरबस वह हम ही दता। उसका बाँने मनुहल हान हास्य भरे वातावरण मी सृष्टि कर ही दता। व दोनों भीतर ही भीतर क्षिन् पर ऊपर से प्रसन्न हो विदा देत-सते।

म आपसे पट्टेता हूँ, आप ही बतलाइयें, क्या आप एस मनुष्य को मूल न कहें? जो बारबार टगा फिर कभी नहीं मानता हो, किमल किमल कर भी गड़हलने का चष्टा न करता हो। नदन ऐसा ही मूल था। मनुष्य एक बार गिरकर फिर स सदा गिरने से बचना है। एक बार टगा जाता है तो गम दूध से जली विल्ली क समाप्त ह्यच्छ जो भा पूर फूँकर पीता है। पर नदन का मैन सीपते कभी नहीं दगा। यह जीना भर भूलता ही रहा।

लगभग दस वष पहले की घात है। हमारी मित्र मडली न प्रमाद नाटक का अभिनय किया था। तब हमारी रिहयल प्रारम्भ हुई थी, तब हमने उसे भी बुला लिया था। सभी हम आपश्यता थी। उसने 'भिषय में भाग लिया था, और वह छ निर्देशन मा कर देता था। हम लों क साधियों म एक बैक वायू थे। वह सज्जन, मिलनसार र अभिनता। वे हमारी मडला इतन बुलमिल गय कि उहों ली घरू आवश्यकताओं और म की ओर ध्यान नहीं दिया। त से पृथक किये जा रह थ। क्या था, व हमारे अभिनय म तल्लीन हो गये। उधर

हमारा अभिषय गृण र्त्रा, इधर बैक वायू की तीसरी। और क्या तो मालूम हुआ कि वायू गडन क पास चाय पाती वे भा पैम रही।

उनही इम स्थिति का पना हमारी मडला म लगा। अभिनय तो समाप्त हो गया था, तसता श्रव शय सम्भालना था। यतिक मित्र धारे धार मिश्र गय। रह गय हम तार्ता। बरू वायू गिडगिडाय, दुग्गी' हुए। उनक पिना सम्पन्न थे। उहोंन एसा ही बतया। और सीम हा रूपय वापस कर दो के अनेक आश्चामन दिव। म दना नहीं चाहता था, नदन क पास बुद्ध था नहीं, और होता भी तो म दने भी नहीं देता। पर पाछे मालूम हुआ गिरीश वायू नदन के घर पहुँचे। उसस अफले में मिले। नदन ने पत्नी की स्वय सुत्रा पिजाली। यह गिरवी रखी गई और वायूजा अपने घर भव गय। उस अगूठा को लकर क्या हुआ, यह सब अलग क्या है। पर उस दिन स वायूजी क कोद समाचार नहीं मिले। नदन का सम्मान तत्र पहुँचाने क बाद त में नहीं जानता।

म तो आज नदन क चान पर जनमत जानना चाहता हूँ।

स्वर्ण-द्वीप

हरिकृष्ण प्रेमी

प्रतस् के गायक

जन प्रिय नाट्यकार

मुलेष्क

१

खडे थे आसमान को छूने वाले, उनको दखा ।
भाँका अपनी कुटिया में, खिंची व्यथा की तीखी रखा ।
सागर के उस तट से दुनिया स्वर्ण लिए आती है ।
देख देख पगालों की जलने लगती छाती है ।

कल तक थे जो सखा हमारे
आज न हमसे हाथ मिलाते ।
देख फटे से बरत हमारे
नरत करते, हँसी पड़ाते ।

२

न पड़ा, "जगत से लड़कर स्वर्ण लूट कर ले आऊँगा ।
ते रत्नों से सज्जित कर निरख निरख कर सुख पाऊँगा ।"
बोली, "प्रिय, विभय प्राप्ति की धुन में तुम सतोष न खोना ।
गँवा कर रह जाता है जीवन में रोना ही रोना ।

प्रियतम, सोना तो फँडोर है,
उसको पाकर क्या पाओगे ?

नारी ईश्वर का पीले

३

पूरी हुई न घात पुम्हारी, हुआ खनाखन रा-द फही पर।
 "बसने का अधिका नही है," सोचा, "रह फगाल मही पर।"
 सजनि 'खनाखन' क रा-दी म मुन न सर्पा तुम क्याक्या घोली।
 कृष्णा ने मेरी नसनस मे सहसा त्रिप की पुड़िया घोली।

। तुमन आँवू भरी निगाहों
 से मेरी कृष्णा का तोला।
 फिर बेबसा भर हाथा मे
 ममता प बधन को खोला।

४

जो नीका मिल गई उमी पर उदकर मैं लहरों से रोना।
 और ले चला नाच जहाँ पर लगना है वैभव का मेला।
 लहरों गरजा उनमे वाला "तुमका हूँ मैं बहुत अथला।"
 आँधी आई, तूफानों ने खार दिया, मैंन सब मेला।
 पहुँच गया मैं मरुत द्वीप म
 किंतु सिपाही ने पथ रोया।
 "यहाँ काम क्या है तुम जैसे
 फट हाल भिगुन लोगों का।"

५

मर उर म आग जल उठी, मैंन ह्यान उमी का भाला,
 छानी छेद, एक क्षण में ही काम तमाम वहाँ फर डाला।
 जिसके पास शक्ति हानी है उसकी ही है स्वणु बपीती।
 हाथ रक्त से रँग कर मैंन की जगभर को, सजान, पुनौती।

।। धम्र फेज फर नगा होकर,
 धसुधरा पर सुलकर नाचा।
 जिसने कहा, "होश मे आओ।"
 उसके जड़ता गया तमाचा।

६

मैंने कहा, "मूर्ख कपर्दी के भीतर सारा जग नगा है।
 जो खुल कर नगा रहता है, धासे बाघों से बंगा है।

इसी समय लक्ष्मी ने आकर पहनादी मुझ को बर माना।
फिर मेरे नग शरीर पर गौरव का धीतावर डाला।

श्रद्धा सिद्धि परियाँ भी आई,

भर भर लाई मंद की प्याली।

भूल गया, तुम किण प्रतीक्षा

फिर कुटिया में बैठी, आली।

७

मुझको स्वर्ण-द्वीप के लोगों ने तब अपना नृपति बनाया।

ताज उतार शीश से अपने लक्ष्मी ने मुझको पहनाया।

लक्ष्मी के वाहन ने सहसा सुंदर मगन-गान सुनाया।

उल्लूको मैना समभा या मैं लक्ष्मी को घर की माया।

एक लहर आई जो पल में

लूट ले गई वैभव सारा।

लक्ष्मी तो चंचल है उसनी

फितने दिन में लगता प्यारा।

८

गया सिंधु के तट पर "तल में चलूँ" अचानक मन में आया।

"यह तो कायरता है, प्यारे!" सुना किसी ने गाना गाया।

देखा, एक नाव पर बैठी तुम मुसफाती गाती आती।

सारे जीवन में न सुनी थी मैंने ऐसी मधुर प्रभाती।

आकर बोली, "चलो प्राण धन,

फिर अपनी कुटिया में जावें।

महलों की विजली तज, घर में

सरस स्नेह का दीप जलावें।



आत्मा का काया से-

वियोग, मोक्ष है

जैसा मान्यता के अनुसार जीव और देह (कर्म देह-पर द्रव्य) का एन्मेकी (पर गुणकारी) सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। किन्तु यह सम्बन्ध इसी बात पर चला आ रहा है कि जीव का देह (परद्रव्य = पुद्गल द्रव्य = पुद्गल के स्पर्श रस गन्ध उष्ण तथा शब्दादिक पर्यायें = पञ्चभूतों के विषयों) के प्रति राग (पुद्गल द्रव्य में सुख की भावित शक्ति) होने से जीव सुख मूल अपने आपकी भूला हुआ है। किन्तु निम्न समय जाग करण लक्षि (अन्तःकरण प्राप्ति भेद विज्ञान) करके बीतराग होजाय तो यह कम से कम अन्तर्बुद्ध में और ज्यादा से ज्यादा अद्वैत पुद्गल परावर्तन (लक्ष्मि विन्दु घात) राग से देह से सम्बन्ध विच्छेद (मुक्ति प्राप्ति) कर सकता है।

सम्बन्धी दशा में ये दोनों कैत घनिष्ठ अभेद रूप से रहते हैं और भेद विज्ञान प्राप्त होने पर जीव वैसा निश्चुर होकर सम्बन्ध विच्छेद कर देता है, उस इसी बात को बतलाने

के लिये श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखी एक बड़ी ही मार्मिक कविता दी जाती है—

“नीव में बड़ा ही अद्वैत कौशल है कि वह शरीर का प्रति-रीणा में ऐसा गभीर बनाना है जसा हृदय कैलाना है—कि जि-गध स्पर्श शब्द आदि अपनी ज-छोड़कर एक सनीव यत्न बन-है।” “जीव अपनी शरीर की अनुयायिनी-को किस तरह ठ-है?” “यह देह के प्रत्येक परा-म एक प्रकार का आकाश का उत्पन्न कर देता है। उस आ-की प्रति शरीर के द्वारा-होना। उसका शरीरों के साम-सौंदर्य उपरिपत करता है, सौंदर्य का अन्त पाता आ-शक्ति का बाहर की बात है। देह के पास जीव जो गभीर-स्थित करता है, उसको अपने-म करता अन्त शक्ति की-वाहक का काम है। और प्राणों के द्वारा उत्साहित-सगिनी भी लता के समान : शरीर प्रशास्त्राएँ कैलाने प्र-

होकर उसको आलिंगन-पास में बाँधता है। वह जीव को धारे-धारे प्रसन्न कर लेती है। बड़े बड़े यज्ञों से छाया का समान उतक साध रहता है, और उगवी सना म कोई भी प्रकृति नहीं होता। "इन प्रकार प्रेम होने के पीछे एक दिन जाय अर्थात् अतुरत और अनुगत देह लता की भूमि में लीयनी-विल गनी हुए छोड़कर चला जाता है। जाने के समय पीछे देह से कहता है—प्रिय, मैं तुमसे अपने से अलग नहीं समझता था परन्तु (मा ही ना = अर्थात् नीचोत्तम पुद्गलाश्चान्व) इष्टोपदेश ५० यह भेद विज्ञान समम-सम्बन्ध का गया है अतएव) आन तुमसे अनायास छोड़कर

जाता हूँ।" वह उस समय जान के देर पकड़ कर कहती है—प्रिये, यदि तुम्हें अन्त ही जाना ही था—यदि तुम मुझको मित्रों में मिलाकर जाना ही चाहते हो—तो इतना दिना तन (अनादि जाल से अवनक) अपने प्रेम में मुझको भुला क्यों रखा? अपने प्रेम से तुमने मुझको महिमा यनी क्या बनाया? हाय, मैं तुमारे योग्य नहीं हूँ। मेरे दिन गुण से तुम मुझ हो गये थे?—परन्तु इन प्रश्नों का उत्तर (मारे शर्म क) वह विदशी (शिद क्षेत्र निवासी) मुझ नहीं दगा और चला जाता है।"

—विचित्र प्रबंध मे

—द्वैततराम मित्र

भगवान महाश्वीर के सिद्धांतों का अनुसरण शाश्वत सहज आत्मीय आनंद का अमोघ उपाय है। प्रत्येक आत्मा में जो स्वभाव है—स्थायी रस है, उसका अनुभव पूर्ण निरीह नैसर्गिक भगवान का उपदेश हम सब आत्माओं का वैनायिक सिद्धांत है।

महाश्वीर ने जो विद्या यही कहा, इसलिये उनकी उपासना मुमुक्षु की शोचोत्तर विभूति है।

—सहजानंद

प्रत्येक धर्म के दो पहलू होते हैं—विचार और आचार। धर्म का आधार यथा है, इसे समझने के लिए विचार की आवश्यकता होती है, उसे दर्शन कहा जाता है धर्म की जीवन में स्तारना यह आचार है।

—आचार्य रामजी

गौतम ने कहा—

“भोक्षस्योपनिपत्सौम्य वैराग्यमिति गृह्णतां ।

वैराग्यस्यापि सबद् सविदो ज्ञान दर्शन ॥

भोज का उपनिषद् (आहार, गन्नाप ले जाया वाला) है सौम्य वैराग्य है एका समझो। वैराग्य का भी उपनिषद् सम्बन्ध है और सम्बन्ध ज्ञान का उपनिषद् ज्ञान का दर्शन है।

“ज्ञानस्योप निपत्स्यैव समाधिरूप धार्यतां ।

समाधेरप्युपनिपत्सुख शारीर मानसं ॥”

ज्ञान का उपनिषद् समाधि समझा, समाधि का भी उपनिषद् शारीरी और मानसिक सुख समझा।

“प्रथमं च यद्यमानस सुखस्योपनिषत्परा ।

प्रथमधेरप्युपनिपत्प्रीतिरप्यत्रगम्यतां ॥”

शारीरिक और मानसिक सुख का उपनिषद् है परम शान्ति और शान्ति का उपनिषद् है परम प्रीति।

“तथा प्रीतेरुपनिषत्प्रामो ए परमं मनं ।

प्रामोक्षस्याप्य ह लेख पुष्टमेव कृतेषुवा ॥”

प्रीति का उपनिषद् परम ज्ञान का माता गया है और आनन्द का भी उपनिषद् है कुकार्यों और अकार्यों से पाड़ा न होना।

‘अहल्लेखस्य मनसः शीलं त्व निच्छ्रुति ।

अत शील नयत्यमयमिति शीलं विरोधय ॥”

मानसिक पाड़ा के अभाव का उपनिषद् है पवित्र शील। इस प्रकार शील ही प्रधान है और (भेदना की और ले जाने वाला पाड़ा है) इसलिये शील को शुद्ध करो।

“शील नाच्छीलमित्युक्त शीलन सेवनादपि ।

सेवनं तन्निदशाच्च निदशरच महाभयात् ॥”

शीलन से शील कहा गया है। शीलन सेवन (बार बार के अभ्यास) से होता है सवन किसी चीज के लिये उत्कृष्ट इच्छा होने से होता है और इच्छा जगत् ही आश्रय में होती है।

“शील हि शरणं सौम्य वामार इवदेशिक ।

मित्रस्य बधुरच रक्षाय धन च बलमेवच ॥”

शील, है सौम्य, शरण्य है जंगल में पथ प्रदर्शक के समान है मित्र, बधु, रक्षक धन और बल है।

[अभ्यधोप एत 'लौ दूर नन्द महाकाव्य के १३ वें सर्ग से]

भारतीय दर्शन की परम्परा

किसी भी दश अथवा जाति की

संस्कृति प्रवाहात्मक होती है। आरम्भ से, यदि उसके आरम्भ की कल्पना की जा सके तो, क्याकि संस्कार शनै शनै होता है, अथावधि परिवर्तन चाह जितने होलें, पर प्रवाहात्मक एक तानता कभी विनुण्ण नहीं हो पाती। एक-एक लहर पर धारा आगे बढ़ती है, कभी अवरोध पा रुकती भी दीखती है, कभी उस अवरोध को धकल फेंकती आर तीव्र गति लाभ करती है कभी प्रवाह पालु को लौटता दीखता है ता कभी भँवर पड़ते जाते, ऐसा प्रतीत होता है कि जल यहाँ का यहाँ बटुलाकार हो रुक गया है। पर यह बढ़ता है, बढ़ता ही जाता है। व्यक्ति क विचार म जो शिक्षा का महत्त्व है, वही महत्त्व जाति क इतिहास में संस्कृति का है। शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास क विषय को लेकर अग्रसर होती है और संस्कृति किसी जाति क शरीर (पारम्परिक संगठन), मन (सामूहिक चेतना), तथा समाज (अन्य जातियों से पारस्परिक आदान प्रदान, योगायोग) क विकास में साधन बनती है। संस्कृति

रामचन्द्र भावास्तव 'चन्द्र'

सर्वत्र आलोचक मनस्वी चिन्तक
साहित्यवेत्ता

श द ही घेस तो प्रवाह का द्योतक है, पर उत्तम स्थैय का भावना भा निहित है। संस्कृति गत्यात्मक भी है, स्थिर भा। जिस प्रकार किसी व्यक्ति की वर्तमान शैक्षणिक स्थिति को जानें और फिर किस प्रकार शनै शनै यह शिक्षा के इस स्तर को प्राप्त कर सके है यह जानने का प्रयत्न कर, इसी प्रकार किसी जाति की काल विशेष म शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्थिति जानना यह संस्कृति का स्थिर रूप है, पर यह रूप उसे कैसे प्राप्त हुआ यह उसका गत्यात्मक रूप है। व्यक्ति की शिक्षा और जाति की संस्कृति के काल विशेष में स्थैय का अध्ययन जब हम कर रहे होते हैं, तब भी संस्कृति का प्रवाह जारी रहता है, रुक नहीं जाता।

घेसे तो व्यक्ति एक शरीर, मन और समाज को एक दूसरे से विलग

नहीं किया जा सकता, स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का नियाँ रह सकता है और स्वस्थ मन ही शरीर और समाज को स्वस्थता प्रदान कर सकता है, फिर भी मन का महत्त्व विशेष है, उसका विकास शरीर और समाज दोनों को साध रहता है, दोनों का स्वयं बनाये रखता है। वही बात जातीय संस्कृति की भी है। संस्कृति जातीय मन का विकास को लेकर अभिप्रेरणा होती है, ज्ञान विज्ञान का द्वारा वह उसका ज्ञानपत्र का सम्पर्क करती है, तो गाय-बलादि तथा धर्म को लेकर वह उसका हृदय का संस्कार करता है। इस प्रकार सुसंस्कृत ज्ञान और भावना को लेकर वह जातीय आचार का परिष्कार करती और जाति को इस योग्य बनाती है कि विश्व के संस्कृति भाण्डार में भाग प्रदान कर सके। यक्ति का भावना जातीय मन भी ज्ञान, भावना और कृतित्व, तीन पञ्चमों का कवच करता योग्य पड़ता है। किसी जाति का ज्ञान, भावना और कृतित्व का विकास अथवा उसका संस्कृति का अभ्युदय है।

जिस प्रकार यक्ति में ज्ञान, भावना और कृतित्व एक दूसरे से विलग नहीं किये जा सकते, व एक ही चेतना के तीन पहलू हैं, उसी प्रकार जातीय मन का ज्ञान, भावना एवं कृतित्व को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा

सकता, फिर भी विचार की दृष्टि से हम एक एक पर प्रत्येक विचार को मकन हैं।

ज्ञानपत्र का यदि हम लौकिक दर्शन का रूप में हमको अभिव्यक्ति मुख्यतः पण्डित होना है, पर कवच दर्शन का रूप में ही ज्ञान का अभिव्यक्ति हृदय यह तो कहा रहा जा सकता कि भी एक बात बहुत ही ध्यान देने योग्य है, वह यह कि दर्शन का इतना व्यापक रूप प्रदान किया गया है कि ज्ञान विज्ञान का समस्त क्षेत्र उसका सम्पर्क दिया गया है और प्रत्येक क्षेत्र को दर्शन की आग में ही दग्ध पर्वना गया है। इस प्रकार भारत में दर्शन का प्रधानता रही है। वेदों का जाल में लेकर उपनिषद् काल पर्यन्त हम ज्ञान, भावना और कृतित्व का तैस कि सम्बन्ध पाते हैं, या या कहिए कि लोगों को विलगता प्रदान कर प्रत्येक प्रयत्न करने का प्रयत्न हम उस युग में कहा देखते हैं। प्राकृतिक शक्तियाँ एक ही मत्ता की अभिव्यक्ति का रूप में स्वीकार की गयी हैं, जिनका प्रति माल मानव ने अपने हृदय की समस्त कृतियों को अर्पित कर दिया है। एकेश्वरवाद (Monotheism) का मूल वहाँ विद्यमान है तो धर्म की दृष्टि से—भावना का अभिव्यक्ति का दृष्टि से—एकेश्वर की भावनात्मक आराधना भी वहाँ विद्यमान है और जातीय कृतित्व की अभिव्यक्ति के रूप

में 'मगच्छध्व, मवद'व' सवोमनायि
 'नानताम्' की ध्वनि उस युग में सुनाई
 पड़ती है। जिम्ने एक को पहिचाना
 है, उमा एक की आराधना ही है, वह
 अपने जैसे अन्य प्राणियों के साथ मिल
 कर एक ही जान का सदृश क्या न
 प्राप्त करगा। भारत की यह मौलिक
 दृष्टि—ज्ञान, उपामना और कम ताना
 क्षेत्रों में आदि-मूला हाते हुए भी अपने
 में समग्र है, अपने में पूर्ण है। इसी
 कारण वेदों को इश्वराय ज्ञान और
 'मव सत्य विद्याओं की पुस्तक' माना
 गया है। यह ज्ञान, धर्म और कम
 विचार की कसौटी पर रम कर चाह
 न दम गय हों, चाह विश्लेषण और
 मश्लेषण के रास्ता पर न चढ़ाये गये
 हों, पर भूगर्भ में निगले गये हारे के
 समान अपने में अपने मूल्य को समाप्त
 हुए हैं, जिसको लेकर आगे पहल
 निकालते रहने भर का कार्य ही
 सम्पादन होता रहा है। ऐसा करने से
 हम तीनों ही क्षेत्रों में उस मौलिक
 हीरे के अनेकानेक पहल देखने को
 मिले हैं जिसका उजोति के प्रकाश में
 संपूर्ण विश्व आपूर होगया है।

उपनिषद्-काल में हमारी दृष्टि
 अपनी ओर भी गई है। जब मानव
 विश्व में चेतना दत्ता है तो अपने में भी
 चेतना का आभास पाता है। वेदों में
 'म' का उल्लेख नहीं है, पर में क्या

हूँ को अपना वह क्या है, कैसा है—
 'कर्मदवाय हविषादिधर्म' का ध्वनि
 ही सुन पड़ती है। उपनिषद् में चेतना
 का द्वेष आकर उपस्थित हो जाता है।
 'द्वामुरणा मयुनासन्नाया' का
 रूप हमें प्रीति की उक्ति करना
 प्रतीत होता है। 'प्रकृति रूपी वृद्ध पर
 दो पत्नी बैठ हैं, एक उसका फल खाता
 है और दुःखभागी बनता है, दूसरा
 उसका फल तो नहीं भोगता और दुःख
 से मुक्त रहता है।' उपनिषद् में उक्त
 रूपकात्मक वाक्य में इश्वर, जाव और
 प्रकृति तानों के अस्तित्व और पार
 स्परिक सम्बन्ध का उक्ति है, पर
 वास्तविक लक्ष्य दो पत्नी ही हैं। इतना
 यह तो उक्ति मिल ही जाता है कि
 आगे चल कर विचारकों ने हनु एक दो
 नहीं, तीन-तीन सत्ताएँ चुनींती प्रस्तुत
 करती हैं और अपने अस्तित्व एवं
 पारस्परिक सम्बन्ध के हेतु विचारक
 का आकान करती हैं। षट्दशन-युग
 इसी चुनींती का उत्तर है। इन्द्र, ज्ञान,
 प्रकृति क्या हैं, इनके पारस्परिक
 सम्बन्ध क्या हैं, यही तो दशन का
 विषय है—यही सदा सवत्र ही यह
 तीनों सत्ताएँ ही दशन का विषय हैं
 और रही हैं। शास्त्रों में भी वेदात्त
 और साम्य इन दोनों का उक्त दृष्टि
 से विशेष महत्त्व है। वेदान्त को लेकर
 मत भेद है। एक मत तो यह है कि
 वेदान्त ने अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन

नहीं किया। वह ईश्वर और जीन की सत्ता पृथक् स्वीकार करता है। दूसरा मन बदान्त म अद्वैत ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करता है। माण्य क विपन्न म भी मतभेद है। एक मन प्रकृति पुण्य दो को ही स्वीकार करता है और पुण्य का ग्रथ आत्मा भर मानता है और "श्वरासिद्धे" सूत्र का प्रस्तुत नर ईश्वर की सत्ता की स्वीकार नहीं करता। दूसरा पक्ष कहना है कि 'ईश्वर असिद्ध है' इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह है नही, वह है ता पर असिद्ध है। X जिन सत्ता स प्रकृति पुण्य (आत्मा) की सिद्धि सम्भव है उन तर्कों क आधार पर ईश्वर की सत्ता की सिद्धि नहीं किया जा सकता। बदान्त और सात्त्विक विषय उन मतों म स कौन सा उचित है कौन सा अनुचित यह निश्चय दना हमारा काम नहीं, पर इतना अवश्य है कि बदान्त और सात्त्विक को लेकर दा परस्पर विरोधी दल उपस्थित हो गये हैं एत ब्रह्म को स्वीकार करता है ना दूसरा प्रकृति और जीन का। पर यह साक्षात् विरोध भी शहराचाय क पश्चात् दीप्त पड़ता है।

जैन और बौद्ध धर्म क दारानिक पक्ष को अपने स पृथ यह दो मुख्य

प्रकृतियाँ प्राप्त हुए। एक प्रकृति ईश्वर और उभय कृतित्व को मानती था और दूसरा प्रकृति प्रकृति और पुण्य को। प्रकृति का प्रसार अपने चारों ओर ही है, हमारे अपने शरीर क निर्माण भी प्राकृतिक है, तब उससे मुँह माझा नहीं जा सकता। हम चलते हैं, घालते हैं, इगते-जेलते हैं, विचार करते और सुख दुःख का अनुभव करते हैं तब हम कथल प्रकृति नहीं हैं, कुछ और भी हैं। बस यह कुछ और ही आत्मा है, प्रकृति के साथ निवारण करन वाला पुण्य है। Descartes डेकार्टे न मा कुछ ऐसा ही तक दिया था यह कहत हुए—'Cogito ergo sum' अर्थात् 'I Think therefore I am' इससे आगे बढ़ कर यह भा कहा जा सकता है कि—'मस्मीभूतस्व दहस्व पुनरात्म कुन।' और कहा भी गया है, भारत म भा, पश्चिम में भा परिणाम स्वरूप एक और चारुवाक् है जो कहता है—'अणु कृत्वा धृत विक्त्' और यही 'धृत' मदिरा का रूप भी ले ही लेता है। 'पीत्वा पीत्वा पुन पुर्वमन विगते।' पश्चिम में भौतिकवाद का प्रचण्ड रूप Epicureanism और Hedonism के रूप म प्रति कलित हुआ। कौन यह सकता है कि योरोप के 'साऊ उकाऊ' जीवन की तह में आज भी Epicureanism की

X पाश्चात्य दारानिक सूत्र से मिला कर दक्षिण।

महत् नहीं दी गई है, मैत्रीतिक
दृष्टि में दर्शाते भले ही आगे चला गया
हो, जीवन उगका साथ नहीं दे सका ।

अनु, बौद्ध और जैन धर्मों ने
दत्ता इभर के नाम पर विद्वान वैदिक
धर्म की हृदय-रूप्या में क्या कुछ नहीं
हो रहा था ? धर्म के नाम पर दिया ।
उग धर्म को धर्म कान कहना ? एम
धर्म और ईश्वर के प्रति किस आस्था
रह जाएगी ? इस प्रतिक्रिया ने बौद्ध
और जैन धर्म को ईश्वर-पराह्णमुल्य
कर दिया । ईश्वर कर्ता के रूप में
कदापि नहीं, मानवात्म्य आचार मोक्षा
के सहार स्वयं परमात्मा बन सकता
है, जैन धर्म ने प्रतिपादित किया । बौद्ध
धर्म ने इस विषय में एकदम पुष्टी
माया । आत्मा के विषय को लेकर
बौद्ध धर्म कल्प सेतना मर को स्वीकार
कर गया, पर न ज्ञान कैम पुनर्जन्म
के मिद्वान्त को यह अस्वीकार न कर
पाया और मां न्याय स आत्मा को
स्वीकार कर गया । यदि पुनर्जन्म का
मिद्वान्त न माना गया, होना ना बौद्ध
धर्म की तद्विरुद्ध मा रता आन के
विज्ञान के युग के अनुसूच होनी ।
एक बात ध्यान देना है कि इन दोनों
धर्मों में स एक ने ज्ञानमीर्षता के
क्षेत्र में मध्यम भाग को स्थापित किया
है ना दूसरे ने स्थापित की । यद्यपि
दोनों एक दूसरे में विपरीत हैं, तथापि

दोनों के मूल प्रेरक मत्व एक ही है
और परिणाम भी एक ही अर्थात्
साधक को तद्विरुद्ध प्रदान करना ।
मध्यम भाग आज के Pragmatism
को साथ में रण कर समझा जा सकता
है और यह ज्ञान Agnosticism को
सम्मुख रण कर ।

सांख्य की मूर्ति ज्ञानम म
प्रत्यक्ष प्रमाण का विशेष महत्व है इसी
कारण सांख्य प्रतिपादित प्रकृति और
पुरुष धर्म प्रकृति ही ज्ञान द्वारा
मान्य हुए हैं । यह जैसे कि वेदान्त के
उपसृक्त दोनों परस्पर विरोधी तत्त्वा का
विरोध करना है । जैन धर्मगर्मित
दशान का ज्ञान मान्यता न है
श्रीमच्छुक्रगोपाय का प्रतिक्रिया का ज्ञान
दिया । ज्ञान पूर्वागत द्वितीय पद
अर्थात् वेद तानुमीर्षित ब्रह्म का ज्ञान
हो है स्थापित किया और स्वयं
गर्मधर्म के निमित्त 'जान एता' के
आधार पर है अर्थात् नक प्रागाद
निर्मित किया । उद्धान 'एता ब्रह्म
द्वितीयो नामिन्' के रूप में ब्रह्म का
स्वीकार किया । एक बात ध्यान देना
की है उद्धान सृष्टिकर्ता के रूप में ईश्वर
का न मान कर विद्यवात्तादि के
रूप में ब्रह्म का प्रतिपादन को ही सृष्टि
माना । क्या इस अर्थ में उद्धान दिव्य
ब्रह्म करने वाले 'गर्भ' ने-जैन धर्म
में पराजय स्थापित करली ? भावित
को कुछ एता ही ज्ञान है ।

शहर व समय तब मूर्तिपूजा और साकार भक्ति भारत में आ चुकी थी और उन्हीं प्रावलय ही चला था। पर शहर व अद्वैत से उनका मेल नहीं बैठता था तब द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, त्रिशिष्टाद्वैत के रूप में अद्वैत का विरोध करने के हेतु जैसे कि उगम ही चार आत्मज पड़े हुए। पर अद्वैत का बोल बाला बाना ही रहा। आधुनिक-काल में आकर उगम पश्चिमाय संस्करण ब्रह्मोत्तमान के रूप में यत्न हुआ, तो पश्चान् श्री रामकृष्ण परमहंस,

स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ के रूप में उगम का प्रावलय मधुर रूप यत्न हुआ। पर अपनी यात्रा में शहर व ब्रह्मवाद के पौन को स्वामी दयानन्द के 'धैतवाद' की ओर से प्रभा भारा ठोकर लगी है कि भविष्य में उगम गर्ज हो जान की सम्भावना है। पक्षपात का जुहाव जब विद्वान हो जाएगा तब वास्तविकता का पता लगेगा और तब शहर का ब्रह्मवाद मनरे का धनी द रहा होगा।

संस्कृति

सीधे सादे शब्दों में संस्कृति का तो मैं वही अर्थ मानता हूँ कि यह समूचे मानव-जीवन का विषयित रूप है। यह केवल सभ्यता का आभ्यात्मिक पहलू नहीं है जैसा अक्सर संस्कृति का अर्थ लोग लगाते हैं। यह मानव समाज की प्रगति के लिये दिग्दर्शक यत्र और नाविष दोनों हैं। यह मानव जीवन को सार्थक बनाता है और उसे पशु तथा उद्भिज्ज जीवन से पृथक् करता है। संस्कृति से ही मनुष्य प्राथमिक अवस्था में जीवन के वास्तविक अर्थ और मूल्य को समझता है और अतः में अपने उस वास्तविक उदय तक पहुँचता है, जहाँ उसे एक मात्र अनन्त शांति, प्रेम, आनन्द, मुक्ति तथा मंगल प्राप्त होते हैं।

—प्रो० ध्यान युन शान

(चीनी विद्वान)

आज का विश्व

महावीर के अथ्य घर

मानवीय उदात्त भावनाओं से श्रोतश्रोत महारीर को रम्किन जैसा उम्र और टालस्टाय जैसा शांत विचार नहीं कहा जा सकता—क्योंकि वे जारा के एकांगी रूप हैं, वे तो साक्षात् माय, व्यक्तित्व प्रधान विभूति अनोखी प्राण प्राण म अन्तःस्थात मो गिराली ज्योति और जन-जन के सूक्ष्ममम जीवन में उलझी और पृथी हुई मानसिक गुणधर्मों को मुलभूत वाले दीन दीन शाना भगवान ही कहे जा सकते हैं जो कि मानव का ही उत्कृष्टतम रूप है।

उनका गौरवण, निय ललाट, पचस्य चेहरा और तन्मयी आँखें तथा मुगलिन दह सब मानव नैमी ही थीं। उनमें कुछ भी तो अन्तर नहीं था ॥

उनका स्वभाव बड़ा ही कोमल नगनीत स भी अधिक द्रवणशील, उनका बौद्धिक विकास बहुत ऊँचा, उनका जीवन का चिंतनशील शिराएँ बहुत गहरी और मत्तभूत विन्दु सब भाव का तरह।

रह, मन, बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, और आत्मा सब हमारी ही तरह की।

मुनि श्री सुशीलकुमारजी

मेधावी विचारक

विश्व निबन्धकार

उनकी परिस्थिति हमारे स अधिन विकट। धर्माभ्यता, मताभ्यता, कहरता, महामूर्खता, निर्द्वरता और अमान धीयता आज के जमाने स भी ज्यादा। पशुओं को अग्नि में फूँक दें और नारा को पैरों का तूती समझें एसा विकट समय था तब।

उनकी आदर्श अधिर्नाश में महामा गांधी से बहुत मारी मिलती-जुलती थी। विनोबा, मरुवाला और त्यहन नैसी सादगी उनका आग पाती थी। य तो मोटे भोटे पक्ष पाते तो हैं किन्तु ये तो इस गरीब भारत का एक तन्तु भी नहीं लते थे, सब गरीबों का लिय छोड़ हुए य। लेकिन य सब कुछ मिलमिला कर भी उनकी तन्धीर नहीं बनती। अपेसे गांधी को भी उनका उपमान नहीं रख सकते क्योंकि महावीर को शम्दों के रंगों में उगारना कठिन ही

नहीं अपितु अमम है। वे तां अनिना
नीय साहसी, प्रयोगात्मा, दार्शनिक-नारी
युग-दृष्टा और युग-स्रष्टा तब के रूप में
पारायण थे।

महावीर प्रायः वैस स्वयं
मिथ्याही और मीने, वैज्ञानिक, वास्तविक,
तथा मार्ग वैस भौतिकवादी नहीं थे।
यह ठीक है कि अपरिग्रह और साम्य
भावना के वे सर्वप्रथम उदात्त
अवस्था थे।

महावीर कविल जैसे जान प्रधान
और पात्रजनित जैसे क्रिया प्रधान भी
नहीं थे। वे मीमांसक जैसे यथार्थ प्रधान
और वेदान्तियों जैसे नितांत ब्रह्मवादी
भी नहीं थे, गौतम जैसे ईश्वर समर्थक
और चार्वाक जैसे ईश्वर विरोधी भी
नहीं थे। भगवान् ज्ञा थे य कहना कठिन
अवश्य है किंतु अनामक नहीं। हा,
अनुमान का अपलम्बन तो लना हां
पड़ेगा। महावीर साम्यवादी होने पर
भी ट्राटस्की और लेनिन जैसे गूनी
क्रांति के समर्थक नहीं थे। वे थे सब
कुछ और कुछ एक नहीं थे। वे नर
वादी और ब्रह्मवादा नहीं होते पर
भी ज्ञ और चैतन्य की सत्ता को
बिल्कुल अनुमित रूप में स्वीकार करते
थे। किंतु जड़ से चैतन्य और चैतन्य
से जड़ की उत्पत्ति को वे ज्ञान कल्पना
मानते थे।

महावीर ज्ञान के कवियों जैसे
आराध्यक नहीं थे अपितु साधक थे।

अदार्शिक और महलों के भक्तियों से
भूय, तर्क, दरिद्रों और मजदूरों के
विषय रचने वाले ज्ञान के प्रगतिवादी
जैसे भा महावीर नहीं थे। विषय-ज्ञान
और समाज की दुरवस्था पर ज्ञान
पर धून लगाकर रीने का अभिनय
करने वाले ज्ञान के नेताओं जैसे भी
महावीर नहीं थे। और त ही शब्द
विषय रचने वाले साहित्यकार ही वह
थे। महावीर त हीरे आदर्शवाद पर
ही भूलत थे और त ही कृष्णभाष्यवादी
की तरह काटे त्रिगेरते थे। वह तो
जीवन के पारंगी, नपस्या की मट्टी में
समूचा सुख-सुविधाओं को भोक देने
वाले उद्भय साधक, जीवत और सत्य
का साक्षात् करने वाले जीवन-दृष्ट
महापुरुष थे।

वे महानतम थे और उनका
साधनाएँ उमसे भी अधि ऊँचा और
मजान भी। किंतु वे भी सब विद्व
कल्याण के लिए। समाज के समस्त
प्राणियों की रक्षा और दया के लिए
(संनजग नीवरनगण दयदृष्टाए
समाज के धारण और पोषण के लिये
ज्ञेय और शान्ति के लिए। (सत्त
पदम अधिज्ञा नगथावर ज्ञेय करी
सत्त जगनीव हिश्च नित्यदवत्तेदि
उनका जन्म भारतवर्ष के विहार प्रांत
के कुण्डापुर नगर में हुआ था। जिस
प्रकार एक मानवी बालक के लिये
भगलोत्पन्न किया जाता है उसी प्रकार

, उमसे भी अधिक रावली ठाठ बाट साथ उनका चम मगल मनाया गया ।

बाल्यकाल में खेल उनकी साहसिकता, धीरता, मातृभक्ति, चात्सल्य इन बालमुलभ श्रेयों ने भरपूर बख्श है किन्तु साहित्यकारों ने उनको तथा अतिरिक्त रूप दे दिया है कि श्रावण क बुद्धिवादी युग में विलुप्त । मानवीय से लगने हैं, और जो उनमें लक्ष्यधारा तथा कचोट, महान स्वाभाविकता चाहिय थी वह दीवनी नहीं । श्री भक्ति श्रवण में हम उनकी गणना श्री पुण्यस्थली में नहीं कुछ जनन का प्रयत्न करेंगे ।

महावीर २८ वर्ष तक जीवन के संन्यासक दृष्टिबिन्दु का सर्वांगीण योग करते रहे । उसमें उन्हें वह शतमुष्टि न प्राप्त हो सकी । इसमें शरीर बढ़कर उन्होंने ऐहिक जीवन की वैधायक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण स्थापित करने की परम्परा का प्रयत्न प्रारम्भ किया । यह उनके जीवित का बटोर और कष्टभरा श्रम था, किन्तु उन्हें इसमें सफलता की भलता दिखाई दी और वे एक हम इस प्रवृत्तियाम सृष्टि में उतार गये हुये और दूर ही लक्ष्य भयङ्कर लगने लगे लगे कर रहे वाली विपत्तियाँ और दिल की कँसा देने वाली दारुण यथापि इनके पीछे लग गई ।

मोह और अज्ञान की जागतिक विश्वेदायियों पर गड़ी हुई दीवारों को लापन में उन्हें कुछ देर में नहीं लगी । वे मगल का आदिम श्रमण में रहने वाले इंसान की तरह अपरिमर्श, बगवटा, और वृद्धिमतायाँ व त्यागी महावीर राजसी सुख सुविधायाँ को ठुकराकर विश्व का अज्ञान भ्रमणों को नापने चल पड़े । यही उनका महा भिन्निकरण था । गौतम-परमर्श की पुनर्न उन्हें वे तब वेना प्रदान की थी । उस संक्रान्ति काल में पनपने हुये दुःख रापण का महार विजेता महावीर के जीवन के संघर्षशील हृदय पर, चौर करने वाले मर्मस्पर्शी सम्मरण, लिये श्री अनुचित नहीं लगेंगे ।

महावीर मटोर मावण के एक बड़ते हुये लगे जा रहे हैं, उन में एक मठ था जाता है, उनके हृदय ठहरने का निमगण्डन है, उनके मत्परीश महावीर के लिए कि मिय अनाक पहलू है, सूर्य चित्तित्त व मिनाजे के लगे है महावीर के हृदय में एक लक्ष्य है । भगवण के लिए एक मोह मागने हैं, एक लक्ष्य के हृदय में उमड़ता हुआ है, एक लक्ष्य है, दिन के लक्ष्य के लक्ष्य है । के दिन के लक्ष्य ना एक लक्ष्य है । एक लक्ष्य के लक्ष्य है ।

यहाँ ही ठहरें और उधर महावीर भी उपयुक्त समाधि स्थान देखकर स्वीकृति देते हैं और चार भाग के लिए विनम्र ध्यानस्थ हो जाते हैं।

गावन के महीने में उमड़ने वाले बादल भी उम्राम से रुठ रहे हैं, पानी की एक बूद भी नहीं बरसती। पशुआँ और मनुष्यों में प्राहि प्राहि मच जाता है। भूख से तड़पती हुई गाँव भोजड़ी के तिनके तिनके चाट जाती हैं। महावार उपेक्षित समाधिस्थ रहते हैं। कभी महान् इधर आ निकलता है, ऊपर नंगा आसमान और नीचे नंगा भोजड़ी महान् के लिए घृणा, स्तानि और क्रोध का विषय बन जाती है। बोल उठता है 'अरे ओ योगी! इस भोजड़ी का घास भी न बचा रात, टीक मरे मित्र मित्राथ न जो तुम्हें राग्य न दिया नहीं तो यह भी कङ्काल हो जाता ।

ध्यान मुद्रा में निम्न महावीर हो आमुल महत्त की मोहमयी वाणी सुनाई पड़ती है। उधर उनका मन इस स्वार्थी मनुष्य पर द्रवित हो जाता है और वे सदा के लिए किमी एक बने बनाय भगान में रहने की अपेक्षा जगलार् एहर्त और भग्न भवना का आश्रय लेने की प्रतिज्ञा करते हैं।

महावीर चल पड़ते हैं, वृद्धा की गोद में और निर्जन और निस्वन बन में जा अपनी साधनाएँ प्रारम्भ कर देते

हैं। मकानों का अपरा मण गाँव के लिए निरान्त अभिराग है क्योंकि इस अस्मरण्याता की भूमि में मोह का, अधिया का, और अधम का बीज बोया जाता है। संसार की निता ही प्रेय तम विभूतिर्वा का इस मठ के शठ ने निगल कर राक्षसी चाला पहाया है।

“मानव के विकराल रूप का प्रतिनिधि शूलनाथि यद् और गगन दोगा ही भगवान् के मयस्तरतम पीडक और दाहक कष्टदायक बन और वे समस्त विपनियों का घनीभूत नमिग्यआँ को भी पार करत चल जाते हैं। हो सक्ता है कि य उनका राक्षसत्वं पर मायना का विनयी उद्घोष हो अथवा मानवाय हृदय के अन्तराल में मर रहने वाले देवामुर गगाम का यह पार्थिव रूप कथाकथा द्वारा अभि व्यक्त किया गया हो। कुछ भा ही यह तो मानता ही पड़ता कि मिद्धि गोरान पर चढ़ा में पहले सूफियां में शैता, योगियां में दवाङ्गना और आय तप शिवियों में राक्षसा में तुमुल मुद्र कर के ही साधक आग बढ़ सक्ता है अथवा नहीं।

साधना में ध्यान वाले तथा और दिल तोड़ दन वाले राक्षसा प्रहारा को पारकर आगे बढ़ने की भावना की पृष्ठ भूमि में हम महावीर के हृदय में धधकने वाली खोज की चाह ही देखते हैं।

सुभ उनक जावन में सबसे अधिक गीता-जागता सोच करने की अन्तर्-निष्ठा का धडकता सदा ही अनुभव होता है। वे संसार भर के समस्त प्राणियों की एक ही चाह और एक ही राह में दुःख कैसे दूर हो और सुख का मार्ग कौन सा है। वगैरेकेवल "दुःख केषु क्व" हमें समस्या का सफल समाधान प्रयोगात्मक रूप में ढूँढना चाहते थे। निधन हुआ ही। उधर व उम हुआ दर के दर्शन करने अवश्य जाते उन्हें मालूम हुआ कि इस मार्ग में फलधर विपैला उन अपनी जलनी अगार ना दृष्टि से प्राणियों को हँस देता है। उसका अर्थों आग बरसने वाले पत्तों की तरह जाना उगलनी है।

सामान्य मनुष्य के लिये इतना ही मुना पर्याप्त था, दिल काँप जाता और भैरवा, भयानकी तस्वीर भी अपने मन में बनाकर भाग खड़ा होना। म्लिन्धु व लोह पुष्प, चमनी दिल वाले महावीर हँसते हँसते उधर चल दिये।

सपना आहट सुना, फल उठाया और एकत्र पुष्कारता हुआ महावीर पर टूट पड़ा। सीधा अना विपुष्पा दौन महावीर के पैर में धुमो दिया और उधर भय विनय मदसुष्कान विखेरते हुये भगवान ने

भी उस प्यार भरा दृष्टि से दगा। उस जन्ता रहा और महावीर निश्चल तथा निश्चिन्त सड़े उसके काटने में सहयोग देते रहे। भय, डर और आशंका ही गलियों में घुसने वाला विष उन निर्भीक भगवान पर कुछ भी अग्र नही कर सता। वह गरल अमृत बन गया और प्रेम कुण्ड से बहने वाला उस प्रमिल रक्त की पीर वह सर्प भी उनकी आर दग्धने रागा। मृदु प्यार श्लोकिक आस्वाद विलक्षण अनुभव, दिव्यमूर्ति और भव्य ललाट की स्नेह सिक्त धारा में डूबकर सोंप अपने को रीं बैठे, भूल गया, अमृत पान में सुख हो गया। मानवीय शांति के आग सोंप जो माँ घुटने टूटने पड़े। यह था मानवता का दिव्य चमत्कार निम्ने वह सप भी मानवता का अमर पुनारी बन गया। और उधर साधन महावीर एक निशानवेत्ता की तरह अवस्था करने रहे। उन्हें सफलता मिली कि मन्मथ दुःख मानव जो विपत्तात्मक बुद्धि के कारण माना पड़ा है। वह उसकी स्वयं की उपन नहीं है। दुःख और सुख इच्छाओं के दाग मानव को अनुत्तल और प्रतिभूल परिस्थितियाँ पर धोप कर निष्ठा निम्नारे में कल्पना की टिकावे रखा पर विषय होना पड़ा है। यदि

परिस्थिति ही दुःख और सुख का उपादान कारण होती तो एव ही परिस्थिति को मानव समुदाय दुःख और सुखात्मक रूपों में क्यों ग्रहण करता ? पुनोत्सव माता पिता के लिये हर्षाद्रेक का और शत्रु के लिये दुःखोद्रेक का क्या कारण बनता ? मानना पड़ेगा कि दुःख ममत्व की कल्पना पर प्रतिष्ठित है और रत्नना इच्छा पर, इच्छा मोह पर, मोह अविद्या और अधर्म पर आश्रित है। दुःख का मूल कारण हमारी आंतरिक धृणा है जिसने द्वेष और इंसान पूरुष के रूप में राग की स्थापना की है। धृणा और आसक्ति से उत्पन्न सुख और दुःख मानव की आत्मा से सम्बन्धित न होकर अर्थिक से अधिष्ठित व्यवहारत्मक बुद्धि से ही सम्बन्ध रख सके हैं। फिर भी हम उसे भ्रातृवश अग्रा मान रहे हैं। इस अपनत्व की सीमावर्दी से निम्नलिखते ही दुःख की जोड़े रूपरेखा ही नहीं रहती। वह था जीवन दर्शन महाधीर का-जिसकी सोज म महाधीर सुग समृद्ध देश विहार छोड़कर हरियों के मुल्क लाट दश म नितने ही बार गय और अनपठ बच्चों काम विहला कामिनियों और गवार मूर्खों तथा दरिद्र कुत्तों का शिकार होना पड़ा। कुत्ते काटते थे, स्त्रियों तग करती थीं, बच्चे पत्थर

मारते थे और गवार मनुष्य चोर उचमना समझ पीटते थे। नित महाधीर मनुष्यत्व में छिपे हुए राक्षसत्व और पशुत्व से परे देवत्व का सम्पूर्ण दर्शन करना चाहते थे। पाशविक और राक्षसी रूप की विभीषिका मानवीय धृणा का सघात रूप है जिसे इत्यने ने मानवीय जगत से निःशक्ति कर दिया है। महावीर उस दसत्व प्रतिष्ठित मानसता का परामाष्टा को उपलब्ध करने का उद्देश्य रखकर चले थे। यही कारण है कि वह अपनी गोज का लिये जीवन का तरह जान को हथेली पर रख कर बढ़ने का चले गये और अंत में पाकर सफलता प्राप्त की।

पिछले जिन कथाओं को मैं पढ़ गया हूँ वे कहानियाँ नहीं हैं। अपितु एक मानवीय जीवन का आयात्मिक लड़ाइयाँ हैं। महाधीर लड़े थे, दुःख चोढ़ा की तरह, और इन युद्धों में तो तो सफल अनुभव उन्हें प्राप्त हुए उसीसे उन्होंने इन सफल युद्धों की अभिव्यक्ति की। महात्मा गांधी अहिंसा को राजनीति में प्रयोग करके चलने वाला पहले आदमी पैदा हुआ और आधुनिक अहिंसा दर्शन का दृष्टा इ जमीन पर अलौकिक महामान भगवान महाधीर हुआ।

मठ की कहानी में सोम और

त्याग की लड़ाई सप के रूपक में हिंसा और अहिंसा का युद्ध, सगम और शूल पाणि यज्ञ की आख्यायिका में राक्षसता और मानवता का संघर्ष लाट देश के गवाराँ का चोर समझने की भ्रान्ति में अनधिकार और स्वस्व का दूध, गमिणियों का कथन में व्यभिचार और ब्रह्मचर्य की हार-जीत का खेल दुःख और सुख को खोना की प्रवृत्ति में सत्य और असत्य को दूढ़ने की चाह ही मुख्य रूप से दिखाई गई है। इन सब घटनाओं में सफलता महावीर की ओर रही है, आत्मविश्वास, अलौकिक श्रद्धा और जीवन दशान भगवान् को प्राप्त हुआ है इसीलिये हिंसा से अहिंसा को, असत्य को सत्य को, चौक से अचौक को, व्यभिचार से ब्रह्मचर्य को और लोभ से मातोष को मानवता का वास्तविक रूप मानने का ही अनुरोध किया है। हिंसा और अहिंसा को आप इतने व्यापक रूप से समझ लायिये कि केवल हिंसा में समस्त अमानवीय प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है और अहिंसा का नाम में समस्त मानवता का नियमांक। एन दिना था जब महावीर ने विश्व हित के लिये विश्व की ओर प्रयाण किया था, व्यक्ति से समष्टि की ओर, अणु से

ब्रह्माण्ड की ओर और सीमा से असीमा की ओर ही वे चले थे।

आज वह भी युग आया है कि विश्व महावीर की ओर चला है। अशांत सम्मता के चल पनना में विहार करने वाला आन का इलाहा मुद्रशान्ति की साथ लेन के लिये अहिंसा की ओर भाव रहा है। भौतिक विज्ञान का उपचय हास के गढ़ों में गिरा ला रहा है, अन्तिम बुझते दीपन की चमक अणुबम्ब, उद्भजन धम्य के रूप में चमकन को है विश्व के विनाश स डरी युद्ध परत जनता सत्य अहिंसा का गान मुना चाहता है अणुशक्ति के उपासक रूप और अमेरिका भी शान्ति के लिये छुट पटा रहे हैं। अहिंसा का विज्ञान और निषेधात्मक दृष्टिकोण समझने के लिये वैज्ञानिकों ने और राजनीतियों ने मिशा भारत में आकर समझने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हम अहिंसा का महत्ता न भी हैं और भगवान् महावीर ने अनुभव तथा हिंसा का भैरव रूप अपने सामने रख लें तो भी हमारा सामना अहिंसा की उपदागिता स्पष्ट समझ में आनासगी। देखिये, सामाजिक स्थिति में यदि हम एन एन दुदिना की मलना करलें जिस दिना केवल मानव कोरी हिंसा, कीरा-असत्य

और चोरी तथा चमिचोर का प्राश्रय ले ले तो क्या आप मान सकते हैं कि एक जण के लिये भी मानव टिना रह सकता है। बिल्कुल नहीं, आप के जो मानव समाज उसा उसाया आपको दीन रहा है उस अहिंसा के कारण ही? मा पुत्र की अहिंसा करता है और इती प्रकार सारा समाज एक दूसरे की अहिंसा रखता है तथा समाज बनता है नहीं तो मात्र समुदाय हिंसा प्रपन्न तो आता बनाया सभी गैल बिगड़ जाय? यहा इत्यान नहीं बल्कि हट पर्यर । तुम्ह दीनों और रखने वाली य होंगी पहाड़ी चाटिया ।

कौनसा माय अपमाना चाहत हो हिंसा का या अहिंसा का? दूसरे शब्दां म निमाण चाहत हो या विरुध? बिकार या निराश? यदि सत्य रूप म रल्याण और उत्पान की अनास्ता है तो याद रणो उ मानवाय मसार तुम्ह हिंसा को मया न्ति रर अहिंसा के शांततासाध्य का मसार लोत ही पड़ेगा इसके साथ यह दूसरा बात भी याद रगनी पड़ेगी कि अहिंसा भी वह जो सामाजिक स प्रारम्भ डाकर आत्मा तक विशुद्ध रूप से पनपनी है, रही रल्याण से सीढा तक जा सकता है किन्तु वह अहिंसा

जो धार्मिक क्रिया क्रावों में जाकर मूढ हो जाता हो, दुबारी म आर बलि में जो अहिंसा हिंसा का दम भरती हो उसी अहिंसा कमी भी मानम रा निराट् शक्ति और शक्ति की आर नहीं ले जा सकता ।

म विश्व की उन समाज विभूतियों की पथिध मानता हूँ, और उन समाज के समस्त मर्मों साधनी, महापुरुषों न दग अहिंसा का ही अदलभया लिया है, मैं यह सकता हूँ कि बुद्ध दत्त, जरधुस्त, अरस्तू, आर मुहम्मद की भी विश्व की महात्मम उन है, वह अपनी अपनी विशपनाओं म गगानतीय और पुण्यास्पद हैं । जैसे कि—

“मयममाग में बुद्ध, जेवा में इना, गानतीय सुधारों में जरधुस्त, सामाजिक चरस्था में अरस्तू और विश्वात जगात म मुहम्मद अपनी अपनी शानी नहीं रगने किन्तु उहा अहिंसा की व्याख्या का प्रश्न ग्टेगा वहा तो हम उस परम तपस्वी महानाग का ही नाम लेना पड़ेगा । बुद्ध से जुना दगा चाहते हो और अहिंसा की उवादीण चारवा समभता चात हो तो आओ महावीर से वाशी हुओ और उनसे अनुभव से लाभ उठाओ । साधनी की अहिंसा का श्रोत महावीर की जीनात्मम

अहिंसा का "याख्या" है किन्तु गांधीना या अहिंसा को सत्कार ने राजनैतिक रूप में ही देखा है उसके दूसरे मुख्य भाग का आध्यात्मिक दर्शन नहीं किया है। हालाँकि सुमाकिरा कर आन का जगत् विषम परिस्थितियों की टफ़र खाफ़र उधर ही जा रहा है। समाज में अहिंसा, सम्पत्ति में अपरिमह और मतमता न्तर में समन्वय करने को आज का बड़े से बड़ा वैज्ञानिक अपनी महान् सफलता समझता है।"

हम तो हर्ष इस बात का है कि पावापुरी में निर्वाण पाने वाल इस महापुरुष का चिरमृष्ट साध्य साधनाएँ किसी न किसी रूप में पनप अवश्य रही हैं किन्तु कितना अच्छा होता जमाना पहल ही मान जाता या आज भी उसे शब्द रूप में समझने का प्रयास करता। परिस्थिति चक्र देकर तुम्हें अहिंसा अपरिमह और अनेकान्त पर लाने का करद इसमें तुम्हारा कुछ तारीफ़ नहीं आतिर करना वही कुछ पड़ेगा और तुम वही कुछ करोगे लेकिन पिछड़ पिछड़ कर। इसमें कुछ आनन्द नहीं। याद रखो आज से २५०० वर्ष पहले जिस दोष तपस्वी ने जातिव्यवस्था का विरोध में आवाज़ उठाई थी आज विद्यार्थीव्यवस्था विश्व में यहाँ कुछ

कर रहा है और शीघ्र से शीघ्र तम इस अभिशाप से मुक्त होना चाहता है। "बम्बुला कम्बुला होद" (ब्राह्मण कार्य पर निर्भर है जातिव्यवस्था पर नहीं।) की प्पनि व अनुसार आज विश्व इस जातिगत समस्या का समाधान कर्म व आधार पर ही कर रहा है। ऊच, नीच, स्पर्श और अस्पृश्य, ब्रह्म और शूद्र व नाम पर इमान को बाटन वाला भारत आज स्वयं अफ्रिका में जातिव्यवस्था व विरोध में लड़ रहा है।

धर्म, मत और मतान्तर के नाम पर इमाना दुनिया में बहुत महारा अत्याचार हुआ है। त्याग, पापखंड, वैद, विरोध इत्यादि दुर्गुण मन वाद में ओट में बहुत पनप है। रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट, सिया और मुनी, श्वेताम्बर और दिगम्बर, शैव और वैष्णव, हीनयान और महायान आदि एक ही जड़ व दो रूपों में बहुत मृत-सरावा हुआ है।

यदि इस स्थान पर अनेकान्त और समन्वय की अनेकान्ती दृष्टि का उत्तम दृष्टिकोण अपनाया जाता तो आज यह रक्त-पात नहीं हो सकता था। क्या धर्म, नया विज्ञान, और नया सिद्धान्त सब समन्वय व वाद अपनी अभिव्यक्ति कर सकें हैं। किन्तु

एक युग में इतना सान्त्वना बढ़ा था कि मानव मानव धर्म का नाम पर एक दूसरे का वैरी था। यद्यपि धर्म का उद्देश्य समस्त प्राणि जगत् में एक अथवा रागात्मक सम्बन्ध का निराम करना था। क्योंकि समस्त प्राणिवर्ग का धर्म स्वभाव लगभग एक वैसा है। सब मूल रूप में एक वैसा इच्छा लेकर गति प्रगति और क्रियमाण प्रक्रिया में लग हुये हैं। मानव पार्थिव पिण्ड पर आधारित ना है, यही कारण है कि मनुष्य पतनात्मक विज्ञान का अथवा भौतिक पदार्थ जगत् पर अधिक विराम करता है। यह स्वभाव की भूल धर्म का अनुष्ठान जगत् पर आज तक अधिकार जमाये रही है। कदाचिन् यही से साम्प्रदायिकता ने जन्म लिया हो। तदनन्तर अज्ञान, परम्परा, प्रथा, रीति, रिवाज और रूढ़ क्रियाएँ कान्च बनकर इस पिशाचिनी साम्प्रदायिकता को प्रत्यक्ष देती रही है। जिसके कारण मानव हम अभी विचार परम्परा के साथ आज तक किमी न किमी रूप में चिपका हा रहा है। भगवान महावीर ने हमी को एकाग्र धारण, एकाग्रो दृष्टि और अपूर्ण स्वोन्नत का नाम से पुकारा था। यदि मैं कदु सत्य कह दू तो मानना ही पड़ेगा कि ये शक्तिजन विभूतिया भगवान महावीर और महान बुद्ध

हम सङ्कीर्ण मनोवृत्ति को मग्नीभूत करने के लिये ही उठे थे किन्तु दुःखी हमारे विपरीत कि इन्होंने नाम से बड़े बड़े सम्प्रदाय चल पड़े। इसमें भगवान तो कारण नहीं रहे ना मकने बल्कि वे लोग जो इनके नाम से बुद्ध अथवा मोर्चावदी करते थे इच्छुक्त थे। कुछ दूसरी बात यह भी थी कि उग सपर्यन्त युग में कोई विचार गारा बिना मत परम्परा का आश्रय लिये पनप हा नहीं सकती था। किन्तु आज का युग में फिर वही मन्वाद और मन्वाय ही परित्र मानना ने अग्रगण्य ली है और वहां अनकान्त विरय विन्धी बनने जा रहा है। महावीर का कोई सम्प्रदाय नहीं था और न जाति पालने का कोई ढंग और न धर्म परिवर्तन का कोई रास्ता तथा न सामाजिक व्यवस्था। हाँ, मानव समुदाय जिस हम मानव समान कह सकत है उसकी अधिक से अधिक सुख समृद्धि के लिये अहिंसात्मक तम अवश्य बताये। बढ़ते हुये मिथ्यात्व को रोकने के लिये सत्य, मानव के निर्माण के लिये ब्रह्मचर्य, सामाजिक व्यवस्था के लिये अविचार और मर्यादा तथा अपरिग्रह का आदर्श उद्धाने किया। ये समस्त नियम उद्धाने दवाव और विरोध पर नहीं अपितु मानवात्मक उत्तेजना रन्ति अधिकारी स्वभाव

के अनुसार रखें। इसीलिये इनमें मयादा का भी विधान किया।

श्रीमती माएंसरो सेंगर विश्व जनीन परिवार नियोजन के लिये गर्भ विरोधक केन्द्र स्थापित करवा रहा है। कितना अच्छा हो कि वासना के काचड़ से निरुल कर महानम साहस और उत्साह का तूफान चलाने वाले वार्ड संवर्धनात्मक ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया जाय और मानव का पवित्र बनाया जावे। आन्धिर आना इसी माग पर पड़ेगा लेकिन चामना का दुर्फल पाकर। कितना अच्छा हो कि नैष्टिक ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय और साथ म कीड़ों मजोर्जा की तरह बढ़ती हुए जनसंख्या का प्रश्न भी सुलभ जाय। महात्मा गांधी, आसम्प्रदानन्द, श्री राधाकृष्णन् आदि नेता, पण्डित, दार्शनिक भी इसी तथ्य आर निष्कर्ष को व्यवहारात्मक बनाने का उपदेश दे रहे हैं। भौतिक जगत् का चारपा कर मानस आन्तरिक मानवीय चेतना को इस पार्थिव जगत् पर एकाग्रत आधारित मानना है। लेनिन, आर ट्राटस्की इसकी हॉ में हॉ, मिलाते हैं। और दूसरे पूजा वादी दश पूजा से इंसान की कीमत आँकते हैं जिसे उनकी आर भी पुष्टि हो जाती है। किन्तु महावीर का अन्तर्दर्शन इस बात का विरोध

करता है। उनका ऐसा रहना है कि समार दो विरोधी तत्वों का सम्मिश्रित रूप है। इसी प्रकार आन्तरिक चेतना और बहिर्जगत दोनों विरोधी होने पर भी एक दूसरे से सम्बद्ध अवश्य हैं, विरोधा होने का कारण चेतना का धन के प्रति आकर्षण ही दीवता है। मूल रूप में नहीं है। दोनों स्वतंत्र और सहयोगी हैं। ऐसा न होता तो एक का आपस में आकर्षण ही नहीं हो सकता था। यदि मार्क्स आन्तरिक चेतना को भौतिक जगत् का उच्छिष्ट और अश्रित रूप न मानता तो वह भी अपरिमह का नव्य युगीन चारपा कर मान लिये जात।

जिसका मूल स्रोत अपरिमह दर्शन ही रहता। वह तो मानव समाज का विभिन्न अवस्था देख कर बीखला उठा है और चेतना का साक्षात्कार में गहरी भ्रान्ति ला गया है। मैं मानता हूँ कि बाह्य विषमताओं का त्रम इस सम्पत्ति के विषमोत्करण पर ही निर्भर है किन्तु मानसिक और आत्मिक स्तरों में चेतना भी अपना अलग अस्तित्व रखती है उससे तो इनकार नहीं किया जा सकता। यह याद रखने वाली बात है आन्तरिक चेतना से शायद यह भौतिक जगत कोरा अभावात्मक और उनका व्यवहार

गा हा सीमेगा । जिवका नि मास्य
रुत नहीं मय है ।

भगवान महावीर का जो
मनुष्य की व्यवहारतन्त्र पराहर
मानत है । और अन्न और जल का
आवश्यक महावीर तत्र । जिवक
जना इस विभिन्न मति मान्य का
व्यवहार और शारारिक सञ्चालन
नहीं हो सकता यद्यपि अधिक
इसकी कुछ महत्ता नहीं मानत ।
इसीलिए ज्ञान स्वार्थ के राता
की तरह सुवर्ण का दश निकाला ग
कर उससे मूच्छा त्याग और उमका
भयादा का उपदेश दिया । जिसमें
मानव की आत्मनि भी का हो मने
ग्रहस्य और सामारिक व्यवहार भी
चल मय । यद्यपि तृप्ति व भगवान
निरोधी थे और विफलित परमथा
प्रणाली म भयादिन ज्ञान का यह
उपदेश दत थे । गाधीवाद की रूप
रेखा में लगभग महावीर व मुन्य
तत्वा की मोट रूप से ग्रहण तो कर
लिया है किन्तु उनका आत्मनिम्नता
छुपी रहा है ।

अन्त में विरोधा के गया
दयवाद म, पलीलजिज्ञान व मानव
वाद म, पूष और पश्चिम व शान्ति
वादियों में मैं तो वहा भगवान
महावीर व बनाए हुए अहिंसात्मक

धर्मों का जीवा इराता पा रहा है ।
और मुन्य आग बद्धक वह धू ता
में इस निरूप पर पहुँचा है नि आत्र
का विरुध यहा ही पहुँचने का उल्लुह
है जहाँ कि भगवान उसे पहुँचाना
चाहत थे । यद्यपि एनिमल मागापटा
और अहिंसा, मय, ममत्तय और
शान्ति नाम पर पात्र विरुध आनि
मनाएँ दिगा म अलग और अहिंसा
की और दुष्णी दुर मानव मना
तृप्तियों उगा महावीर व निर्दिष्ट पण
का मद्दत कर रही है । आत्र का
विरुध अत्रा भगवत उच्यभावाता,
और उच्य कापाता तथा उच साधना
पर प्रतिष्ठित कर्ता चाहता है ।
मुम तो एमा लग रहा है नि यह
भा युग था कि जब महावीर हम
जगत् व हिन इरन व लिण अत्रना
विराट् साधना म ततर थे आत्र विर
एमी शुभ येना आइ है नि विरुध
का प्रवण अशान्ति जनना म
महावीर का दिव्य धर्म में अत्रा
आपको महावीर बनाना चाहता
है । लगभग म तो विरुध व कण
कण से यही साधना मुता पा रहा
है नि प्रमे ।

“भयतो मा महावीरत्वं गमय
तप्तसौ मा चातिगमय
मृत्योर्मांगृत गमय”

मनुष्य जी रहा है—मनुष्यता मर रही है

उपनिषद् व युग से आज तक मनुष्यता को अमानवीय तत्वों से जो सघर्ष करना पड़ा है उसका इतिहास जहा एक ओर बसक स पूष है वही दूसरी ओर यह उन 'लाल निशानों' की ओर सङ्केत करने वाला भी है जिन्हें हम अन्तर तब भूल जाया करते हैं जब हम मनुष्य के लिये तब में मनुष्य न रहकर मनुष्यत्व का दम्भ लिये उसकी जीवित लाश होने हैं। तब से हम बहुत उठे हैं, तब से हम बहुत गिरे हैं। हमारे उठने का मानदंड भौतिकता और गिरने का पैमाना आध्यात्मिकता रहा है। अन्तर हमने अपने आभ्यन्तर को पिछले दिनों 'भौतिक इरोपिन' (Materialistic Erosion) के मयङ्कर विषकों में डाला है और उसकी मजहें काटकर बड़े प्रसन्न हुए हैं। हम उठे हैं बड़े बड़े यशों व साथ ईंसान की उस ताकत को हीड़ देकर जो मूलतः 'आध्यात्मिक मूल्य' पर आधारित है। हमने मनुष्य की चेतना को आवरण म रतकर उसकी शारीरी शक्तियों और संपत्तियों को ही प्राथमिकता दी है। किन्तु त्रि-सुगी सत्य इसन निपरीत है। वह यह कि बिना स्वस्थ चेतना के स्वस्थ रक्त सरधान की स्थिति असम्भव है।

नेमीचन्द्र जैन

लगाए, पत्रकार, कहानीकार

मनुष्य का मनुष्यता में उसकी चेतना प्रथम सत्य है, मनुष्य दूसरा। यद्यपि यह सही है कि मनुष्य और मनुष्यता दोनों अस्तित्व सापन्न हैं किन्तु इस युग व कुतूहलपूर्ण भौतिक चमत्कारों ने इस सत्य को कि मनुष्य मनुष्यता का 'कोट' उतार कर भा जीवित रह सकता है, अधि काधिक प्रचारित किया है। आज मनुष्य जा रहा है। मनुष्यता तिलक रही है स्या उमरी नाम टूटने को है।

'अहंत्', 'ब्रह्म' 'चिन' 'स्वयम्भू' आदि, सज्ञाओं स चिम शक्ति का सम्बोधन दाशनिन युगों स अब तक होता रहा वह हमारी आभ्यन्तरिक चमत्ता ही है जो आज की ममत्वाओं की दाहक भाटों पाकर बुरी तरह झुलग गद है। जो हो इतना तो मानना हा चाहिय कि मनुष्य का मन आज पहले से बहुत छोटा और छोटा हो गया है। छोटा हो सो-सो कीद बात नहीं, पर खोट उसम उत्पन्न हो वह चित्ता का विषय है। धर्म वह है जो मन व दायर को दरिया बनाये। नाति वह है जो मन को

नयन द। कर्म व है जो इस चीज को पाकर सर्व-भूत-हित में लग। और यदि और यह सब नहीं है तो निश्चय है कि ऐसी बुनियादी यज्ञ होना चाहिये जिसने इन सब मानव पूर्वों की अपनी वास्तविकता से नापे गिराया है। यह बुनियादी धुन है—“जीवन का धर्म स तनक।”

जावन ने धर्म को छोड़ दिया है इसलिए उसका भ्रमणत्व गिर गया है। दूसरे लक्षणों में— हम जावन में धर्म व सामञ्जस्य को ही मनुष्यता मानते हैं। वह मनुष्यता का क्या जो स्थिर (Static) का और यदि वह क्रियाहीन नहीं है तो निश्चय का व गतिशाला (Dynamic) है। मनुष्यता बढ़, घट नहीं, इसी की पहचान युगा स-धर्म, दशन और जीवन व अन्य सत्यावपी तथा कला शोधक मूल्य करत आरह है। सम्यक् मनुष्य भ्रमणत्व से बच नहीं सकता। और यदि वह भ्रमणत्व में चक्का है तो निश्चय मानिये उसमें सम्यक्त्व का अर्थ दिनों दिन उभर रहा है। उसके इस अर्थ की शुभा हट में ही उसकी नीचे की भीत है दुःख है मरटापत्र स्थिति है।

आज व युग की सबसे बड़ी अपक्षा 'भ्रमणत्व, सम्यक्त्व और

मनुष्यत्व' का त्रिवेणा है। यही मनुष्यता का महात्तीथ है। यही अन्तगाह रर युगों की चेतना पर तर निष्पक् हु है। आज 'मशीन' की गर्मी ने इस त्रिवेणा का जल सोख लिया है इसलिए मानव मद्धलिया भीतर से तलक रही है। जो हो यह सुनिश्चित है कि अब तक रीन गये पानी से मनुष्य का मगल घट पूरा नहीं जाता। मानव समाज उत्तरोत्तर पवन व महागत में विवक्त लेता हुआ उतरता जायगा, उतर रहा है।

इन दिनों मनुष्य हलका नहीं बोझीला बना है। दुनिया जानती है हलकी वस्तुओं का मोक्ष और मूल्य वजना वस्तुओं की अपक्षा अधिक ही होता है—वशनें यह स्वभाव का हलकापन नहीं पर्याय का हलकापन हो। स्वभाव की यह लुश-नसीबा परिग्रह से नहीं परिग्रह व अभाव से ही सम्भव है।

आज आचरण ने भा कर्म का साथ छोड़ दिया है। यह भी एक कारण है जिसने मनुष्य के सम्यक्त्व को क्षत विनन किया है। सत्य व सचरण की इस दिशा को जब तक धर्म नहीं सम्भू पाते तबतक मनुष्य 'नीता रहेगा तो क्या, उसका आत्मन्तर का प्रमुख अर्थ—“मनुष्यता”—उत्तरोत्तर मरता रहगा।

नागरिकोचित संस्कृति

महापंडित श्री आशाधरजी ने श्रमणोपासक नागरिकोचित संस्कृति कैसी होनी चाहिये, इस बात का एक श्लोक में (सा ध ११) वर्णन किया है। जो कि इस प्रकार है—

- × १ -याय से धन कमाने वाला हो अर्थात् श्रमजीवी हो, जुआरी न हो।
- २ सदगुण सेवक हो। अर्थात् गुणजन (गुणीजन-सज्जन) सेवक हो, दुजन सेवक न हो।
- ३ हित मित प्रिय भापी हो।
- ४ त्रिवग (धर्म अथ काम) की परस्पर विरोध रहित सिद्धि प्राप्ति करने वाला हो।
- * ५ नागरिक हो। अर्थात् सामाजिक नियम पालक तथा दाम्पत्य जीवन वाला हो।
- ६ लज्जालु हो। बेशरमे न हो।
- ७ योग्य (मद्य मांस रहित) आहार तथा योग्य विहार करने वाला हो।
- ८ सत्-सज्जन-संगति करने वाला हो।
- ९ विचारक हो।
- १० कृतज्ञ हो।
- ११ इद्रियों को बश में रखने वाला हो।
- १२ धर्म विधि को सुनने वाला हो।
- १३ दयालु-दानी-हो। अर्थात् अज्ञानी, भयभीत नगे भूले, तथा रोगी-श्रमण, इन चारों प्रकार के दुखी जीवों के लिये यथाशक्ति तन मन धन त्याग करने वाला हो।
- × १४ पाप (हिंसा, भूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह) से डरने वाला हो।

× जूआ, मद्य, मांस तथा पच पाप, इन आठ का कुट्ट न कुठ रूप में त्याग करना, नागरिक के ये आठ मूल गुण कहलाते हैं।

• सागार धर्मांशुत $\frac{३}{६०६२}$ $\frac{३}{३०३१}$ (जिनसेन आचार्य आदि पुराण)

श्री संयोगितामज, सहाधीर जयति महोत्सव कमेटी संयोगितामज, राँची द्वारा प्रचारित

मसीहा ने कहा—

“तुम सुन चुके हो, कि कहा गया था, कि आंग्र ने बदले आंस और दांत के बदले दांत। परंतु मैं तुम से यह कहता हूँ कि बुरे का सामना न करना परन्तु जो कोई तेरे दाहिने गाल पर यत्पड़ मारे उसकी ओर दूसरा भी फेर दे। यदि कोई तुझ पर नालिश करके तेरा झुरता लेना चाहे तो उसे दोहर भी ले लेने दे। और जो कोई तुझे कोस भर बेगार में ले जाये तो उसने साथ दो कोस चला जा। जो कोई तुझसे मांगे उसे दे, और जो तुझसे उधार लेना चाहे, उससे कुछ न मोड़।

“तुम सुन चुके हो, कि कहा गया था कि अपने पड़ोसी से प्रेम रखना, और अपने बैरी से बैर। परंतु मैं तुमसे यह कहता हूँ, कि अपने बैरियों से प्रेम रखो और अपने सताने वालों के लिये प्रार्थना करो। जिससे तुम अपने स्वर्गीय पिता की सतान ठहरोगे क्योंकि वह भलों और बुरों दोनों पर अपना सूर्योदय करता है, और धर्मियों और अधर्मियों दोनों पर मेह बरसाता है। क्योंकि यदि तुम अपने प्रेम रखने वालों ही से प्रेम रखो, तो तुम्हारे लिये क्या फल होगा? क्या महसूल लेने वाले भी ऐसा ही नहीं करते?

“तुम पृथ्वी के नमक हो, परंतु यदि नमक का स्वाद बिगड़ जाये, तो वह किस वस्तु से नमकीन किया जायेगा? फिर वह किसी काम का नहीं, केवल इसके कि बाहर फेंका जाय और मनुष्य ने पैरों तले रोंधा जाये। तुम जगत् की ज्योति हो, जो नगर पहाड़ पर बसा हुआ है वह छिप नहीं सकता। और लोग दिया जलाकर पैमाने (एक घर्तन जिसमें डेढ़ मन अनाज नापा जाता है) के नीचे नहीं परंतु दीकट पर रखते हैं, तब उससे घर के सब लोगों को प्रकाश पहुँचता है। उस प्रकार तुम्हारा बलिबाला मनुष्यों के सामने चमके कि वे तुम्हारे भले कामों को देखकर तुम्हारे पिता की, जो स्वर्ग में है, बड़ाई करें।

“मांगो, तो तुम्हें दिया जायगा, हूँ दो, तो तुम पाओगे, खट खटाओ, तो तुम्हारे लिये खोला जायगा। क्योंकि जो कोई मांगना है उसे मिलता है, और जो हँसता है, वह पाता है, और जो खटाता है, उसके लिये खोला जाता है।”

नागरिकोचित संस्कृति

महापंडित श्री आशाधरजी ने भ्रमणोपासक नागरिकोचित संस्कृति कैसी होनी चाहिये, इस बात का एक श्लोक में (सा ध १५) वर्णन किया है। जो कि इस प्रकार है—

- * १ 'याय से धन कमाने वाला हो अर्थात् भ्रमजीवी हो, जुआरी न हो।
- २ सद्गुण सेवक हो। अर्थात् गुरुजन (गुणीजन-सत्जन) सेवक हो, दुजन सेवक न हो।
- ३ हित मित-प्रिय भापी हो।
- ४ त्रिवग (धर्म अथ वाम) की परस्पर विरोध रहित सिद्धि प्राप्ति-करने वाला हो।
- * ५ नागरिक हो। अर्थात् सामाजिक नियम पालक तथा दाम्पत्य जीवन वाला हो।
- ६ लज्जालु हो। बेशरमे न हो।
- ७ योग्य (मद्य मांस रहित) आहार तथा योग्य विहार करने वाला हो।
- ८ सत्-सज्जन-संगति करने वाला हो।
- ९ विचारक हो।
- ० कृतज्ञ हो।
- १ इन्द्रियों को बश में रखने वाला हो।
- २ धर्म विधि को सुनने वाला हो।
- ३ दयालु-दानी-हो। अर्थात् अक्षानी, भयभीत, नग भूले, तथा रोगी-अपग, इन चारों प्रकार के दुखी जीवा के लिये यथाशक्ति तन मन धन त्याग करने वाला हो।
- १४ पाप (हिंसा, भूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह) से डरने वाला हो।

८ जूआ, मद्य, मांस तथा पच पाप, इन आठ का कुञ्ज न कुञ्ज रूप में त्याग करना, नागरिक के ये आठ मूल गुण कहलाते हैं।

* सागार धर्माभूत $\frac{२}{६०}$ $\frac{३}{३०}$ $\frac{३}{३१}$ (जिनसेन आचार्य आदि पुराण)

१ सयोगितागज, महावीर जयति महोत्सव कमेटी सयोगितागज, इंदौर द्वारा प्रचारित

निदबे अमय भी है। विज्ञान का कसौटी पर जिस दिन भी वे सत्य सिद्ध हो जायेंगे, मरा 'जैन' उस समय उन्हें सत्य मानेगा।

महामा गांधी का मृत्यु को मैंने 'निर्वाण' का स्वरूप मान लिया है। 'भोले' और 'निर्माण' का परिभाषा आगे कल्प में मैं महामा गांधी की अस्थि प्रसन्न क्रिया को मान गया हूँ। जैन शास्त्रों में शायद यहाँ तो कहा गया है कि 'मौन' आने पर मर जाया पुनर्जन्म से, अक्षर संसृति और उसका रूप है—शरीर का कर्पूरवत् उड़ जाना। यह कर्पूरवत् उड़ जान का मतलब है निस्कारण शरीरम दशों दिशाओं में प्रकाशित हो उठे—महक उठे। क्या इस युग में महात्मा गांधी की अस्थि प्रसन्न क्रिया गकार के जल-कान में जल धवताओं के चरणों में उत्सर्ग सहित

रने को समझा नहीं था?

यदि थी, तो 'निर्वाण' मरे, ^मस्तुत हो गया है। मैं ^म कि महावीर का निर्वाण ऐसी ही प्रक्रिया थी। ^म शा—'सत्य' साधन

नहीं होता। 'सत्य' प्रत्यक्ष होता है। आधुनिक व्यापार, लाभ की दृष्टि से, व्यवहार में लोग 'सत्य' मान लेते हैं। यान काला बानार भी सत्य है पर यहाँ तो 'अमय' है। उस सत्य धर्म के मानने वाला को मैं 'जैन' कंस कह सकता हूँ, मैं कहता हूँ— उत्तम ज्ञान, भाव, आनंद, सत्य, शीघ्र, मयम, तप, त्याग, अहिंसन, ब्रह्मचर्य य सब सत्य हैं। 'मदाचार धर्म' सत्य है लेकिन 'क्रिया कमकांड' धर्म के 'सत्य' नहीं। ये सामयिक आचार भेद हैं। परिवर्तनशील हैं। वेद-दृष्टिमान के लिये इनमें परिवर्तन उचित है अतथा 'सत्य' का कल्याण नहीं हो सकता। दशधर्मों की परिभाषाएँ सदा रूप में समझना चाहिये। शास्त्रों के अवलोकन से 'मदाचार' का 'प्रतिपाद'—दर्जा व दर्जा धारण करने का क्रम निर्धारित कर दिया गया है। इसलिये आनेपक पहले इस सत्य को विचार लें। लक्ष विस्तार की दृष्टि से अधि नही लिखूंगा, लेकिन मैं मानता हूँ कि "मैं 'जैन' हूँ"

‘मैं जैन हूँ’

लोग अक्सर मुझमें पूछ बैठते हैं—“तुम अपने नाम के साथ ‘जैन’ लगाते हो, रात्रिमोक्षण का उन्हें त्याग नहीं है, मदिग चाले नहीं हो, कर्मकाण्ड का पालन नहीं करते कम ‘जैन’ हो ?”—प्रश्न सही है। मेरा निबन्धन है—जैनधर्म के प्रवर्तन आदिनाथ ज्ञान श्रृणभद्रव थे। उन्होंने स्याद्वाद, अपरिमह, अनेकाल और धीतरागता के आधार पर जैनधर्म प्रतिष्ठित किया। इन विचारों की स्थापना में पृथग्भूमि उस समय का सामाजिक समझौता रही होगी। महावीर के समय भी ‘हिंसा, यज्ञ और बलि’ के लोप की बात इतिहास प्रसिद्ध है। ‘यज्ञि के मनो द्वन्द्व का परिणाम ही सामाजिक धारणाओं की प्रतिष्ठाना है। शोध, विचार उमका जरिया है। श्रृणभद्रव या महावीर ने नवम्ब जिज्ञासु हास्य माया के लिए चिन्तन किया। उन्होंने पूव की प्रतिष्ठित नहीं किया बुद्धि और अनुभव का सहारा दिया। समाज माय शायद अनन्त धर्मों में प्रतिष्ठित ‘भगवान’ की उपस्था इसीलिए महावीर ने कर दी। ऐतिहासिक ज्ञान मुझ नहीं है, समय

श्री भानुशुमार जैन
अनुवादक, विचारक, पत्रकार

है, पार्श्वनाथ ने भी यही किया हो, लेकिन जिज्ञासा से यह बात सिद्ध होती है कि वे सब महात्मा सत्य की शोधी बाल थे, और जो बात उन्हें उपयुक्त, उस समय का विचार-बुद्धि स लगी, वह धर्म के प्रवर्तन के रूप में स्वीकार कर ली। मैं भी इसी मान्यता को लेकर ‘जैन’ शब्द की अभिव्यक्तियों को धारण किए हुए हूँ। आचार और किया-कर्मकाण्ड की दृष्टि में मुझमें और आमा-जैतियों में बहुत फरक है। मैं बुद्धि और तर्क की बगौटी पर आचरण कर, अपत को, जैनधर्म के संस्थापक श्रृणभद्रव और प्रवर्तक पार्श्वनाथ, महावीर की परंपरा में ही एक अनुयायी मानता हूँ। ‘सत्य’ को सापक्ष मानना मेरे नियम भी समय नहीं है, ‘प्रत्यक्ष’ सत्य है। आज के इस वैज्ञानिक युग में मैं मानता हूँ—स्वातंत्र्य, नरक, व्यतर ज्ञाति के दख, पुत्रात्म, माय्य आदि विषय तर्कनय नहीं है, और दसा

लिख व असत्य भी हैं। विज्ञान का कसौटी पर जिस दिन भी वे सत्य सिद्ध हो जायेंगे, मेरा 'जैन' उस समय उन्हें सत्य मान लेगा।

महात्मा गांधी की मृत्यु की मने 'निर्वाण' का स्वरूप मान लिया है। 'मोक्ष' और 'निर्वाण' का परिभाषा आज रूप में महात्मा-गांधी का अग्नि विसर्जन किया की मान गया है। जैन शास्त्रों में शायद वही तो कहा गया है कि 'मोक्ष' यानि इस भव राधा पुनर्जन्म से, समीर से मुक्ति, और उसका रूप है—शरीर का कण्डू रक्त उड़ जाना। यह कण्डू रक्त उड़ जाने का मतलब है निमका वश सौरभ वशों दिशाआम प्रसारित हो उठे—महक उठे। न्याय इस युग में महात्मा गांधी का अस्थि विसर्जन किया समारथ कोने-कोने में नल देवताओं के चरनों में उत्तम सहित प्रवाहित करने की प्रमाणा नहीं थी। और यदि थी, तो 'निर्वाण' मर, मामने प्रस्तुत हो गया है। मैं मान गया कि महावीर का निर्वाण उस समयकी ऐसी ही प्रक्रिया थी। मैं लिख रहा था—'सत्य' सापक्ष

नहीं होना। 'सत्य' प्रत्यक्ष होता है। आधुनिक व्यापार, लाभ की दृष्टि से, व्यवहार में लोग 'सत्य' मान लते हैं। यान जाला बाजार भी सत्य है पर वही तो 'असत्य' है। ऐसे सत्य धर्म के मानन वालों को मैं 'जैन' कैसे कह सकता हूँ, मैं कहता हूँ—उत्तम जमा, मादक, आज्ञा, सत्य, शीघ्र, सयम, तप, त्याग, अश्विचन, ब्रह्मचर्य ये सब सत्य हैं। 'सदाचार धर्म' सत्य है लेकिन 'त्रिशा कमकाठ' धर्म 'सत्य' नहीं। ये सामयिक आचार भद्र है। परिपतनशील है। जैन-दृष्टि लाने के लिये इनमें परिपतन उचित है अथवा 'सत्य' का कल्याण नही हो सकता। दशधर्मा की परिभाषाएँ सदा रूप में समझना चाहिये। शास्त्रों के अवलोकन से सदाचार की 'प्रतिमाएँ'—दत्ता व दर्ता धारण करने का क्रम निर्धारित कर दिया गया है। इसलिये आक्षेपक पहले इस सत्य की विचार लें। लेख विस्तार की दृष्टि से अधिका नहीं लिखूंगा, लेकिन मैं मानना हूँ कि "मैं 'जैन' हूँ"



शक्तियोग

ने कहा—

‘मैं तो सिर्फ यही समझता हूँ कि जो कुछ अपने पास है, रात दूसरा की सेवा के लिये है। आखिर यह जो चोला हमें मिला है, वह किम काम के लिये ? इस लिये कि ‘शुले नयन पहचानो, मुन्दर रूप निहारो।’ ये कान जो हमें मिले हैं, किस लिये ? इसलिये न, विज्ञान की चर्चा सुनें ? जिस दिन क्षात्र की चर्चा सुनने को नहीं मिली, उस दिन ये रात, कान नहीं रह जाते, साप के थिल के समान बन जाते हैं। ये हाथ किसलिये हैं ? क्या लोगों को सतान के लिये ? नहीं, हाथ इसी लिये मिले हैं कि बीमारों की सेवा करें, डरे हुएओं को आश्वामन दें, सज्जनों को प्रणाम करें। इस तरह हमारी सारी शक्तियाँ हम गरीबों की सेवा में लगा दनी हैं, ताकि जब समय आवे तब, ‘ज्यों की त्यों धरि दीनी चढ़रिया।’

नागवल्ली

शुभार्थों का पुरानी बात है—

राजकुमार कमलनयन की सोलहवीं वषगाठ का समारोह मनाया जा रहा है। राजमहल के उत्सव मयन में उत्साह और थड़ा भी भरता पर सम्मीरता प्राप्त है। समस्त रत्न नटित सिंहमुखा सिंहासन पर मन्त्रा कीर्तिविजय, समीप ही शशमुखा दमकते आसन पर राजकुमार कमलनयन, और चरण दो चरण पाद हटकर मेढामुरती सादे आसन पर महामात्य कश्यपदेव विराजमान हैं। अलंकारों से विभूषित एक सन्त राजरानिया भी महारानी के साथ रेशमी धागों की जाल पहिका की श्रोत में उपस्थित है। सामने कुछ गीचे दशमगण चुगी साथ उत्सुकता भरी दृष्टियों के राजघराने की शोभा निहार रहे हैं। भरी सभा में प्रथम दो-तीन पक्षियों में रात्र के बड़ बड़ राव उमराव, सरदार, महाराज सट साइकार जमे हुये हैं, और उनके पीछे कमरा मुख्य मुख्य अधिकारी और कर्मचारी जमे हुये हैं।

स्वरूपकुमार गागेय

रहानाकार, गीतकार, लेखक

साया व कल में नामी घरानों की कुलकामिनिया राजकुमार कमलनयन के सादर्य पर 'वारी वारी जाऊ' का उभिया हृदय सागर में उछालती हुई अधमिले कुसुम से उल्लसित सुकुमार पर दृष्टिया ठिटना कर मन ही मन प्रशस्ति में उलसक मुनभ रहा है। आर उपर दूसरे कोन में एक और मिट्टी का मूरत गढ़ा है। मूरत है एन अद्भुत स्त्री का। इसे गृन की मोटी दाव पर लटका हुआ दिखाया गया है और आस-पास पंद्रह बीस अधिक दानवा अट्टहास के साथ उछलते-कुदते उसने प्राण ल रहे हैं। श्रृतिगों का मूर्तिकार है नागदत्त, जो रंग विरगी पगड़ी पहिने उल्लाम का आभा चेहरे पर उमाकर मूरत के पाय ही पटकारी चौका पर बैठा

श्रावण के समागोह का लड़ बिन्दु
 है। सरकारों प्रचार न हम मूरत
 का विद्वितिया' का प्रचार माता है
 श्रावण, हमारे वध का किया श्रमी
 प्रभी राजकुमार कमलनगन के
 हाथा मयज हागा। या तो क्या म
 इस राज्य म प्रतिपद राजकुमार
 की शपमाठा पर 'विद्विति वध' क
 उभय मनाथ जान श्रावण है, किन्तु
 समाधानकारक श्रवणका म ला।
 अनभिज्ञ ही है। रहा है जयम
 सम्राट् कीतिविजय क पिता मय
 विजय का हम प्रभा की गुरु किया
 था। राधाधरा पंडित और विद्वान
 रहने है कि महाराजाधिराज गृह
 विजय प्रभा का करिष ऊचा उठाना
 चान्त म, इगलिन प्रतिपद म
 राजकुमार का वपगांठ क दिन
 राजकुमार द्वारा यह 'विद्वितिवध'
 करवाया करत थे। और उया
 परम्परा के श्रनुमार वृद्ध पर
 लटका दियाइ मर 'भाटा मी मूरत',
 मुनिफार गगदल द्वारा इस वप
 भी मन्वाइ म' है। नागदत्त को
 भा'रो' था मय प्राप्त है। महाराजा
 धिराज गृहविजय म समय में इसका
 बाप नाद के श्रावणिया बनाया
 करता था। पंडिता ने का श्रम
 प्रचलित कर गस्ता है उस कुछ बड़
 धूद नहीं मानत। ये इस सम्प्रथ 'म
 कोर 'गूढ़' कहानी जानते से

लगा है और जब श्रावण
 ज न क लिय लाग इट कर बैन
 ह, ना यह दन है कि हम क्या को
 प्रगट करन यात क वंश का नाथ
 हो जाता है। उ कहत है कि इस
 क्या का वरम राज्य का महामन्त्रा
 हा कह मन्ता है। इश्यर न उस
 हा वधम एम श्रधिकार दिये है।
 विद्याम भगवान होकर युव हो जात
 है, और का युद्ध पंडितों ने प्रचारित
 म मयका है, मही मला
 था रहा है। ही राजकुमार
 कमलान का यह खानडवा जय
 मिय है। बीन पन्द्रह वषों का
 तह इस वप भी, भाई हा
 मर म' उनर हाथा वध किया
 मयम म' जात वालो है। जब व
 न है न द-भोगह नीरों म 'मूरत'
 रो व' दग, तत्र ममान कतिविजय
 मला 'ए' प्रहार स 'मूरत' को
 गूर गूर म' देंग। बाद मय
 राजकुमार, मुनिफार को वधभूषण
 दकर ममानित करेंग—फिर
 उत्पथ मी ममाति को पोषणा कर
 दा जायगा।

समय लगभग आ लगा' है।
 और श्रम दर्शन गण श्रावुर भी
 ही उठ है। उत्पथ मयन क बाहर
 भी दूर तक जन सागर लहरा रहा
 है। यह 'मयन' कुछ ऐसे डग से
 निर्मित किया गया है कि 'बाहर

वृत्तलोक भी भीतर चलने वाले
नाराइ को देख सकते हैं।

दीर्घ समय महामात्य खड़े हुए
आरमानन्द को झुंझर अभि
वादन किया। बाहर उन रथ धीना
पड़ गया। सपन भवदार सपेद
पूजा से आच्छादित श्रोत्र दिले,
श्रीर प्रशन्न ललाट की गहर्नी
मुखियों को आर भी अधिक गहरा
बनान हुए महामात्य बोले, आन
दा दिन बहुत शुभ और मंगलमय
है, यह अत्यधिक हृष का विषय है।
हमारे प्रिय राजकुमार आप
गोलहनें वर्ष में प्रवेश पा चुके हैं।
यह ना आप सब जानते ही हैं कि
'विद्वन्निश्चय' का समानोह राज्य में
विद्वानियों को नष्ट कर देने की
प्रशंसाएँ देने के लिये मनाया जाता
है। आपको प्रति वर्ष इस 'माटी की
मूर्त' का परिचय दिया जाता है।
इस वर्ष भी मैं यह बताया चाहता
हूँ कि यह आकृति पाप और क्लृ
पता की मूर्त है और इस हम गष्ट
करना चाहते हैं। प्रथम तो तान
पत्नियों में बैठे हुए राज ठमराय
नालिया पाटकर सम्राट और राज
कुमार की तय त्रयकार करना लग।
महामात्य ने गर्गर् होकर अत्यन्त
माधुर्यता से सम्राट और कुमार
को फिर अभिवादन किया। 'सम्राट
मुखराय और महामात्य ने हाथ

उठाकर सब को शान्त हो जाने का
इशाग किया। तभी भयन न निम
त्रिंशदशक तो शांत हो गये, किंतु
बाहर कोलाहल बढ़ गया। सब
लोक घूम-घूम कर पाठ करने लग,
महामात्य भी अत्यन्त बानते रुक
गये। इतने में ही एक भूल्य दौड़ा
आया और महामात्य के कान में
बोला कि एक चीज उदा करबत
भीतर आना चाहती है। यह कहती
है कि यह सम्राट के समस्त राज्य
की भलाई का बात रखना, चाहती
है। और ऐसा भी कहती है कि
यदि उस रोका गया तो प्राण तक
न लगी। इतना तो नहीं, यहा तक
बाल रहो है कि सम्राट और कुमार
में बिना मिले यदि यह भर गड तो
राज पर प्राण नष्ट पंगी। महा
मात्य लापवाही की हफडा भस्का
उमार कर बोले, 'यह काई पगली
होगी। धक्के देकर बाहर करो
और लोगों में शान्त रहने के निश्च
रहो।' महामात्य से आदेश पाकर
अत्य लौटा हा चाहता था, कि
सम्राट ने उसे उठाकर कोलाहल के
धारे में पूजा से अत्य ने सम्राट को
यों ना त्याग सुना दिया। सम्राट ने
महामात्य को बुलाकर आया दी कि
उस वृत्त की आने दिया जाय।
महामात्य ने एक क्षण सोचा फिर
बोले, 'महाराज वह तो एक पृथ्वी

स्त्री है। उसी समय राजकुमार ने हठ पृथक कहा 'पगली ही तो भ्या, कुछ देर मोरजन ही होगा।' महामात्य चुप थे। वृद्धा को स्वीकृति मिल गई। सब लोग देखने लगे कि हाथ में फूल माला लेकर बड़ी बड़ी आंखों वाली बुढ़िया मंच का ओर चली आ रही है। सब ओर निम्न शब्दा छा गईं। पर वृद्धा समीप पहुँची तो मूर्च्छिकार नागदन्त जैसे चान उठा। वह अपनी आरा सुन बुध भूल बैठा। उसके थोड़े कुछ बोलने के लिये फरफरा उठे, किन्तु उसे भीतर से सिन्धी ने जैसे रोक लिया। उसका गला रुध गया। उसकी दृष्टि मय और अचरम स बध गई। वृद्धा ने सबसे पहिले उस अदभुत नारी की 'मूरत' र गल में माला डाली और फिर कापो हुए हाथों स पान सात तालिया बचाईं। सम्राट् और राजकुमार उसे पागल समझकर सुस्कराये, तथा महामात्य सूरत उतारकर साश्वय दर्शन लगे। परद स ओट में बैठी राजरात्रियों और 'वाल कनी' में बैठी कुल कामिनियों के चेहरे गौरव से अक्षण हो उठे। वे कुतूहल पूर्य दृष्टि स देखने लगीं। वह 'माग' ही मूरत' तो विद्वतियों की 'मूरत' गान, किन्तु फिर भी न जाने क्यों वृद्धा का यह कथ्य

नारी समान को गूब भाया। शाय इगोलिये भाया होया कि यह एक नारी का आकृति था। और चाहे उस मूरत को किया भी रूप में, बहा रनखा गया हो, किन्तु पुरुष की निन्दुरता और दग्ध हो चुगीनी दरर नारी ने नारा क प्रताक को सम्मानित किया है, यह बात अन्न, मां से उठकर अक्षय उत्सव मनन स सभी स्त्रियों क ऊपर चेतन मन स जम गई, तमी तो वे अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर अक्षण ही उठीं। ..

यह करने के बाद, वृद्धा ने सम्राट से प्रार्थना की कि आज जब कि वह राज में बुराईयों को नष्ट करने का दिन मना रहे हैं तो राज की भलाई के लिये उसे एक सत्य प्रकट करने की आज्ञा दी जाय। महामात्य बीच ही म धील उठ कि पगली के प्रलाप में समय नष्ट करना बध है। सम्राट के कुछ बोलने के पहिले ही राजकुमार ने कहा कि वृद्धा को कुछ देर बालने दिया जाय। महामात्य चुप रहे। वृद्धा को आज्ञा मिल गई। पहिले वृद्धा ने कनसियों से नागदन्त की ओर दरा। नागदन्त पत्थर की तरह निर्जीव सा बेबस था, जैसे उसे किसान कील दिया हो। फिर वह बोलने लगी, 'पुनी! विद्वति का मूरत, आप देख

रह है ? मैं इसकी सच्ची कहानी
 आज बनाना चाहती हूँ' महामात्य
 आत्मसंयम होकर उठे और
 सम्राट् को शापना की कि वृद्धा को
 अन्याय प्रलाप करने में रोकना जाय।
 प्रथम पति में बैठे हुये कुछ बूढ़े राजों
 और उमरगाँवों भी गड़े होकर
 महामात्य का साथ दिया। उत्सव भवा
 ने बाहर भारा भीड़ में शोर हुआ
 कि वृद्धा को बोलने दिया जाय।
 राजकुमार ने कहा कि जब बुढ़िया
 किसी मृत्यु बात से उठे शवगत
 कराना चाहती है तो रोकना क्या
 जाय ? आज का दिन तो विवृत्तियों
 को नष्ट करने का ही दिन है। सब
 चुप हो गये वृद्धा बोलने लगी,
 'पुत्रो ! महाराजाधिराज स्वयंप्रिय
 जी के समय की बात है। एक दिन
 जब मैं अपने पति के साथ (मृत्यु
 की शोर इंगित करते हुए) इसी
 बेटी की खोलहवीं वर्ष गाठ मगा
 रही थी कि 'महामात्य गरज
 उठे, 'पागल है ले जाओ इसे यहाँ
 से।' सम्राट् ने भी आज्ञा दी कि
 वृद्धा को पागलगाँव पहुँचा दिया
 जाय और योग्य चिकित्सा का प्रबंध
 करवा दिया जाय।' उधर मूर्तिभार
 नागदन्त दात फिट कियाकर वृद्धा
 को लाल आँसुओं से देखने लगा।
 बाहर से आवाजें आई, 'माँ को
 बोलने दिया' 'ग' को बोलने

दिया जाय' जब राजकुमार के जानों
 में 'मा' शब्द टपराया तो उन्होंने
 महामात्य का रोना और कहा कि
 वृद्धा को बोलने दिया जाय। महा
 मात्य असहाय से हाथ मलने बैस
 गय। सम्राट् ने हस्तक्षेप नहीं किया।
 वृद्धा बोलने लगी, 'तो हम जब
 विटिया की चप-गाठ मगा रह थे
 कुछ अनजाने लोगों ने बराबर
 हमला किया और विटिया को उठा
 कर ले भाग। बहुत खोजने के बाद
 पता लगा कि वह किसी पलशाली
 गिरोह के फटिन मारागृह में बन्द
 है। उसे बाहर निकालना किसी
 ने भी वश की बात नहीं है। मेरे
 पति नागदन्त के पिता ने 'सब
 लोग मूर्तिभार नागदन्त की आश्रय
 संदलो लगे। राजपराने ही आरों
 भी नागदन्त को धरती लगा। नाग
 दन्त उद्भान्त दर में चिल्ला उठा,
 'माँ माँ नू यहाँ क्यों आई ? शर्म
 नहीं आती, सम्राट् का अपमान
 करती है, निगले तुम्हें यहाँ भजा
 है ? (सम्राट् की ओर) सम्राट्
 समा करजा हमका मस्तिष्क ठीक
 नहीं है म माँ न लिये प्राण
 दात की भीषण मागना हूँ।' राज
 कुमार शीघ्र बोल उठे, 'नागदन्त,
 हम तुम्हारी माँ का बात मुर्नेय
 (महामात्य की ओर) महामात्य
 इस रहस्यमय कथा को

दा। इससे राम मुसकृत होगा। महामात्य ने अधारना से भुंकर कहा, 'प्रियकुमार। मुझे आशांका है कि कहीं इससे राजपरा अधमा तिल न हो जाय।' फिर महामात्य सम्राट् की इच्छा जाना व लिय उठी और अपने लगे। सम्राट् राजकुमार का मन रखने हुए कहा कि मयादा का ध्यान रखने हुए बुद्धिया की बोलने दिया जाय। वृद्धा बोलने लगी 'सो नागदन् के बाप ने लाख जतन किये, किन्तु मेरा बेटा नामरलगी वापस गतीनी, न लौटी। उमर कई दिनों बाद पापियो ने उम एक दिन वृक्ष पर अदन्त अदन्ता न लटका दिया और चलती मशालों से असाध वेदनाएँ पहुँचाते हुए उमक प्राण ले लिये। इस मया का मुख्य कारण यही था कि उमन उम काराग्रह ने सहस्रों सुदियों को एक रात मुक्ति दिलवा दी था। वह स्वयं भी भाग निकलती, किन्तु सुन चरों ने उस परक लिया। महा मात्य क्रोध से हाथ रूढ़ थे। ऐसा लगता था मानो उन्हें जैसे कोई मालों से मोद रहा हो। सम्राट् भी आश्चर्य, क्रोध और सुदहल की सम्मिलित भावनाओं से उद्विग्न होत जा रहे थे। राजकुमार बधी दृष्टि से वृद्धा की देखते हुये जिना गहराई में जैसे उतर गये थे। उनकी आर्वा

में उत्सुकता भी साफ़ तैर रही थी। वृद्धा ने उम स्वरो में मुक्तिकार नाग दन् की सम्बोधित किया, 'बेटा नागदन् ! तुम नहीं जानते। मैं उम्ह आन गव कुछ बताउगी। कई दिनों से मोच रही थी कि उम्ह कुछ बताऊँ किन्तु प्रिय राजकुमार व परिपक्व हो जान का गह भ दल रहा था। आन समय अनुकूल है।' उमा एक तण का अयकाश लिया फिर अधिन उद्विग्न होकर बोलती लगी, 'बेटा, अछ कामों से राज्या भय नहीं मिला करता। राज्याभयो व पाद भी बड़े बड़े रहस्य होते हैं। (मूत की शोर) इस मूरत की तरा बाप भी बताया करता था किन्तु लाचारी वश मौन के डर स। और कुछ न मालूम हों स, इस मूरत की उना में व अपना गौरव सम भता चला आ रहा है। बेटा यह मूरत तैरी उमी बहिन की है' नाग दन् पागल की तरह चिल्ला उठा, 'मा ! क्या यह नागवल्लरी की मूरत है ?' महामात्य ने अधार होकर कहा, 'सम्राट् रोकिए, मयाका दूट रही है। निषेदन है रोकिये।' सम्राट् भी तमतमा उठे। राजकुमार ने फिर भी मुत्ने की ही उत्कटा प्रकट की। वृद्धा की वाणी बेगमयी हो उठी। वह दुःखानि से बोलने लगी, 'हा बेटा यह नागवल्लरी ही

ह। वृद्धे बड़े चाव से बनाता चला आ रहा है। अपराध तेरा नहीं है। मैंने ही तुम्हें यह सब हुंसा रक्खा था। मैं इसी दिन के लिये ली रहा थी। आज मन्त्रमुच मरी शिंदी माधक हुई। यह नहा करती तो न जान फित्ती पीढ़ियों उठ तेरी बहिन और हमार तुल का अग्रमान होता रहता और तू बतरा मताने अपन अपको गज्या धयी मानर न जान न तन अपन हा माध ध्यनिचार करती रहती।' क्लानार नागदन्त की आँखें दमन उठी। फिर आँखें लवालन भर आइ। वह उठा और नागवल्लरी की मूरत के चरणों में माधा धरन मि श्वासें छोड़ने लगा। नाग सभा स्तब्ध थी। मन्त्र पर गानराजा कीलित था। महामात्य भीराय से उठ। उन्होंने तमतमाकर तलवार की आधा घाँच लिया और आदग की प्रताप्ता म सम्राट् की श्रोग मुग्धा निव हुय। वृद्धा बरी नहीं। वह बोलता गइ, 'बेटा! उठो एक बात और सुनलो—अन्तिम बात। इसी अन्तिम बात में मेरा मौत छुपी हुई है।' नागदन्त ने मूरत के चरणों से भाल ऊपर उठाया। उसका आँखों के कटोरे क्रोध, शोक पश्चात्ताप और हय मिश्रित आमुर्था से भर पूर थे। 'वृद्धा बिजली सी कड़क

उठी, 'बेटा! वृद्ध महामात्य सब जानते हैं। (दाव किटकिटाकर) हा, यह वृद्धा रत्ती रत्ती जानता है। सम्राट् न लिये नहीं रहता, य उन दिनों नासमभूथ। दनस सब कुछ छुपाकर रक्खा गया है। हँ सो काग मालकर सुनलो उस सारी घटना न पोछे और कोइ नहा महा राजाविरान सूयविजय ही थ। मन्त्र कहती हूँ व सुदरियों के प्यास थ।' महामात्य ने तलवार खींचली और मतपाल मनग की तरह वृद्धा की ओर दौड़ पड़। सभा के राव उम राव और उच्चप्रेणी ने तागनिक दहाइ उठे, 'मारो, मारो, बुद्धिया हो मार डालो' सम्राट् की आँखों से ज्वालाए धरमने लगीं। राजकुमार भय, घृणा, दया और उन्माद की भावनाओं में हतप्रभ से दीगने लगे। गशमा जाल-पट्टिया न पीछे विस्मय और क्रोध से गानरानिया के भुमके डिल डुल उठे। बाहर सहस्रों कठ फूट पड़, 'मा की जय! नागवल्लरी की जय !! तागदन्त की जय !!! वृद्धा न चेहरं पर भय नहीं हर्षान्माद के आयू प्रवाहित हो रहे थ। उसके गिर पर महामात्य की तलवार चमकी तो नागदन्त ने भपट कर महामात्य के कापन हार्था से उसे छीन लिया। सम्राट् राजकुमार सहित सभट की इस स्थिति में

रेशमी परद की ओट में सरक गये। पित्तले दरवाज से जनता भीतर घुस पड़ी और लोग वृद्धा और नागदंत को ग्राह्य निकाल लाये। महामात्य वशव देव धायल होकर मंच पर तेर ही गये।

× × ×

इस घटना के दो दिन बाद नागदंत और वृद्धा पकड़ लिए गए। सम्पूर्ण राज्य में श्रावण का साम्राज्य स्थापित कर दिया गया। थोड़े समय बाद एक दिन आधीरात में राजकुमार कमल नयन यथायक जागे वहाँ गायब हो गए। दीड धूप शुरू हो गई। नगर नगर, डगर डगर गुमचरा ने टूटने में रात दिन एक कर दिए। बीहड़ बनों, पहाड़ों व दरारों में योत्र की गई किन्तु राजकुमार नहीं मिले। राजमहल में शोक का बादल छा गया। सम्राट् जोसि विजय घन दुःख में डूबकर एका तवासी जावन व्यतीत करने लगे।

एक दिन सुबह जब सम्राट् सोकर उठ तो दरवाजे पर एक पत्र पड़ा मिला। पत्र राजकुमार का ही था। पत्र इस प्रकार था—
'पूज्य पिताजी।

म जोत्रिन है। अब मुझ सुग और बिलाम के ससार से विरक्ति हो चुकी है। रात महला में मेरा

वास नहीं हो सक्ता भरे पितामह जो कुछ कर गये, वह अत्यन्त घृणित थाय गा। उनसे काले कारनामों का प्रायश्चित्त मुझ करना होगा। मैं इस वश का कलक धोऊंगा।

हा, यदि मुझ से प्यार है तो राज्य में 'नागवल्लरी देवी' का एक मन्दिर बनना दीजिये। कलाकार नागदंत और उस 'मा' को कराण्ड में नहीं अपने हृदय में स्थान दीजिये।

मुझ अपार सुशी है कि उस दिन वृद्धा ने आगामी सदियों को प्रेरणाए देने के लिये, घृणित और क्रूरतम सामन्तशाही की विवृति को साहस पूर्वक उपस्थित किया। 'मा' ने हमारे जन्म-जमान्तर के पाप धो दिए। मैं इस खले में नागवल्लरियों (पान की बलों) के पास बैठा बैठा देव रहा हूँ कि अम्बर से त्राशिलष्ट सम्बृति का अविच्छिन्न आलोक शने शने धरती पर उतर रहा है। जिस दिन नागवल्लरी देवी के मन्दिर की मुमधुन घण्टियाँ का रव प्रवाह की तरह यह निकलेगा, मैं उम्मी प्रवहमान-बलहास संगीत की उच्छ्वन तरंगों पर सनरण करता हुआ एक दिन लौटूंगा। आपस भी मिलूंगा। —हा, पर बधूंगा नहीं। मानाजी को चरण स्पर्श और उस 'मा' की भी जो कराण्ड में दिन काट रही होगी। कलाकार

नागदत्त जो भी प्रणाम—

‘कमल नरा’

। पत्र पढ़कर उठ। एकांत में म
सम्राट् कार्त्तिकविजय विफल हो उठे।
कुछ क्षणों तक गवाक्ष से वे नीले
आसमान को दम्ने रह, फिर आत्त
स्वर में पूट पड़े, ‘मन स्वीकार है
कमल, मुझे सब स्वीकार है।’ और
फफक् फफक् कर रोने लगे। जब
कुछ हल्के हुए तो आधात्र देकर
भृत्य को बुलाया और आशा दो कि
महामात्य को इसी समय उपरिधत
किया जाय। थोड़ी ही देर बाद

१११ महामात्य केशव देव ने लगङ्गाते
लगङ्गाते कक्ष में प्रवेश किया।
सम्राट् ने इस विषाद और रोष के
सम्मिलित भावों को चेहरे पर उभार
कर महामात्य को राजकुमार का पत्र
दिया। फिर कुछ देर रुक रह और
बोले, ‘यह सब शाप ही, जाना
चाहिये!’ महामात्य ने झुकते झुकते
कहा, ‘किन्तु सम्राट् ॥ सम्राट्
उत्तेजित हो उठ, ‘आदेश का पालन
हो।’ तागापुत्री केशों वाले भिकू
लाग महामात्य गदगद मुकाकर परा
जित से लगङ्गाते-लगङ्गात लौट गये।

कम्प्युशस ने कहा है—

‘जैन का अर्थ मनुष्यों से प्रेम करना है। जैन से युक्त व्यक्ति
अपना भरण पोषण करता हुआ दूसरों का भी भरण-पोषण करता है।
अपना विकास करता हुआ दूसरों को भी विकसित होने में मदद देता
है और अपने प्रति जैसे व्यवहार की अपेक्षा करता है, दूसरों के प्रति
ठीक उसी प्रकार का व्यवहार करता है।’

महामा कम्प्युशस का एक सिद्धांत

प्राथना श्रीर याचना की पुकार है, वहाँ साम्यवाद के 'अधिकार दो'—शर्तों में एक आग्रह है, दबाव है, धमकी है, नि अधिकार शब्द के गर्भ में ही बलात् प्राप्ति का बीज समाया हुआ है—उत्तम याचना या सुभाष की पुकार नहीं, बल्कि चुनौती से स्पष्टित ललकार है।

इस विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि अपरिग्रहवाद यदि अहिंसा की छाया का प्रवास है तो साम्यवाद हिंसा की चिल चिलाती धूप का सफर, छाया-छाया में हमें चलना है कि धूप की तादृशता ने बीच हमें धँस पड़ना है—यह विनारक्षणीय विषय है, और सोचते समय, निरसदेह, यह भी नहीं भूल जाना है कि ससार में छाया कम और धूप अधिक है। यहाँ यह कहना यदि अप्राप्तिकर नहीं तो यथ तो होगा ही कि चुनाव हम इन्हीं दो में से किसी एक का करना है और अग्रस्य ही करना है, कि यह निश्चय कराने की स्वतंत्रता हमें नहीं है कि हम चलेंगे हा नहा—स्थिर रह्यो, ठहरे रह्यो, क्योंकि गति-उद चाह प्रगति हो अथवा प्रति गति, तो अनिवाय ही है, जीवन का अनुपलक्षणीय तकाजा ही है कि हम ठहर नहीं सकते, हम चलना ही होगा, अतः, मतभेद आज यह नहीं कि विषमता की वनमान तम और गद्दी गलियों में से निकल, भौतिक मुल शानि सम्पन्नता की महान गजिन की ओर हमें बढ़ना

नाहिए या नहीं, बल्कि यह कि निग्रहवाद के तत्त्व में श्रीर निग्रह मनाभूमि पर हमें कदम पठाना है—यह प्रश्न है।

× × ×

ऊपर, मो कहा कि चुनाव हमें इन्हीं दो में से किसी एक का करना है और अग्रस्य करना है। क्या अग्रस्य करना है—इस पर विचार किया जा चुका है। अब, दो में से ही क्या चुनो—यह दगना है, यद्यपि कि आशिक सनेन इग सम्पन्न में द चुका है, फिर भी और अधिन स्पष्ट कहना प्राप्तिकर ही होगा—कि सत्य के बिन्दु को परिवेष्टित करने वाली श्रम्याय की परिधियाँ हैं, वे अस्तित्व की दृष्टि से हैं अग्रस्य, निन्दु, सचमुच, उनका अपना पन इतना उभरा हुआ नहीं है कि—उई भिन्न भिन्न रूपों में मान्य किया जा सने, क्योंकि दम दम, बीस बीस कदम अलग-अलग चलकर वे—सभी, इहा दो में से किसी एक न एक में आत्म समपण कर बैठनी हैं—विलीन हो जाना है, इमीलिए मेरी धारणा है कि धे विचारणाय नहीं। अग्रस्य ही, आज हमारे सुम में, गांधीवाद के नाम से निम पथ की प्रगति हुई है, और वाजगी न कारण जिमम प्राप्तपण भी है तथा निमो निगाहों को अपनी ओर खींचा भी है, निन्दु सद्ग या स्थूल विता भा धैय-दृष्टि से यदि हम दगें ता पाड़े से परिक्रम व पक्षान स्पष्ट

हुए बिना नहीं रहेंगा कि महावीर व अरिष्टहवाद् स भिन्न गौंधीवाद की कोर् अपनी स्वतंत्र ग्रंथनीति नहीं और सच तो यह कि अपने समूचे रूप में गौंधीवाद आशिर रूप में महावीरवाद व अतिरिक्त है ही क्या ? प्रायः, हमारी पीढ़ा में से कौन यह नहीं जानता कि गौंधी ने स्वयं अभी भी यह आग्रह नहीं किया कि उनके प्रतिपादन को मौलिक तथा सत्त विरोध प्रदान किया जाय, कि उनका निरेशन भारत के अनेकानेक प्राचीन मन्त्र पुस्तों व विचार-आधार पर ही प्रस्थित है, निरंतर ही विनम्रता पूर्वक वे यह उद्घोषित करते रहें। अतः, इस तो ताव कुल अतिभावों का निर्दोष आदेश ही रहना चाहिए कि वे गौंधीवाद को एक सत्य स्वतंत्र पथ के रूप में प्रकाशित करने का मोह और अहं नहीं छोड़ पाते, अथवा, निरन्तर ही गौंधीवाद अपने आत्मिक रूप में, मूलतः गीतावाद, बुद्धवाद और जैनवाद—अर्थात् भारतीयतावाद का एक सभिन्न एवं समन्वित संस्करण ही तो है।

ता यह निर्विवाद है कि चाहते हुए भी, प्रयत्नपूर्वक टहर रहना हमारे यत्न की बात नहीं और यह भी सुनिश्चित है कि रामने हमारे

संमुख दो हैं—दो ही हैं। दुर्भाग्यवश, विमृष्टता उस समय और भी बढ़ जाता है कि जब एक दिशा की ओर उन्मुख खड़े पथिकों का दूसरे पथ पर स्थित यात्रियों व प्रति सम्नेह निमग्न होता है कि वे अपनी राह को गलत समझ लें और उन्नी बगल में आकर अपनी भूल सुधार लें। और, जब यह नेह निमग्न अनुकूल प्रभावोत्पादन नहीं कर पाता तो स्वभावतया स्नेह विरोध में परिणत हो जाता है और निमग्न का स्थान युनैतियों और अन्यायित आरोप ले लेने में। फिर तो दोनों ही कैम्पास घोंपणों की जाता है कि पुण्य ज्वल उन्नी व परम है, अतः मुक्ति भी उन्नी की सत्संगिना है, कि उद्धार, मागे, उन्नी व तम व सम्मुख पहला दस्ता है। और, इस 'त व', 'म म', व नीच, चौराह पर खड़े हम अविशेष व्यक्तियों के सम्मुख अनावास ही समन्या आ उपस्थित होती है कि हम किस पर विश्वास करें ? हमारे सफल तरल नेत्र किसकी ओर आशा भरा पलकें उठाएँ ? हमारे हृदय किसका अनुसरण करें—वे हृदय कि जो उठने के लिए मत्तूर हैं, विवश ही हैं कि मर जिन के शब्दों में चलल हुए—सगति हुए जिनका निवाह है ही नहीं कि पाड़ी दर

भी यदि वे और नहीं उठत तो
लपटा जायें—

'पुण्य का उधर पाप का अधर,
चिदगी दो घूर्ता के नीच,
मिथु-सी दूर मुक्करा रही
निगल जाने को आतुर भीच,
ठहरते जने, न चराना इष्ट,
पक्षि के सम्मुख दिग्भ्रम
धरा के नीचे हैं पाताल,
गगन पर बसा हुआ है स्वर्ग,
बीच में अधरमनुष्य का अहम् ।'

और इस प्रकार दिग्भ्रमित,
द्विविधा मन्त हम जब, भविष्य की
आशा में, यतना से धरना कर
अनीत की शरण में जाते हैं कि
शायद वहाँ से कौद् विविदा इमित
प्राप्त हो जाए, तो दुभाग्यवश,
निराशा ही हाथ आकर रह जाती
है, क्योंकि इतिहास साक्षी है कि
आज के चत्तमान की भौति अनीत
की भी ऐसे ही भ्रम में पड़कर, जब
तब, दोनों ही प्रकार के प्रयोग करना
पड़े है, इसलिए कि अतिरिक्त, आज
चाहें वह भले ही अनीत की महा
पा गया हो किन्तु, उन समय तो वह
व भिन्न हो था, और History
repeats itself—इतिहास अना
आप की दोहराता है—यदि यह सच
है तो हम अपने चत्तमान को प्रताप
का ही पुनर्भूत रूप कहना चाहिए
किर, एका स्थिति में, सिगत सं

मत्स्या के समाधान की आशा भूय
तृष्णा के अतिरिक्त और क्या गिद
हो सकेगा ?

हाँ, तो स्मरण, बचारा अनीत
हम तो कुछ महायत्ना के पाना है,
वह कम इतना ही कि हम उक्त
अनुभवों से यह बात कर ल सकते
हैं कि दोनों सद पथा में कि कितना
सौदा अचनाइत अधिन मन्ना है
और किमना अधिक महेगा। नहीं
तक मूल्य का प्रश्न है, स्पष्ट है कि
माध्यवाद या अधिभारवाद इस प्रथ
में महेगा हा सदैव रहा है कि यह
परशुराम का तरह पर रक्त दान
चाहता है, जब कि अपरिग्रहवाद ने
भा यद्यपि सुरगामी की समत मार्गी
है, किन्तु दधाचिदा के आत्म
विसर्जन के रूप में है। किन्तु,
अधिभारवाद जहाँ कात्त के रूप में
महेगा है, वहाँ वह प्राप्त फल के रूप
में मन्ता भा है, कि उक्त माध्यम से
समाधा हुआ सौदा इन्तमनमन्त
तत्फल प्राप्त होकर ही रहता है,
चाहें, वह थोड़ी दर बाद किसी के
ज्ञान-अज्ञान भ्रम से फिर क्यों न
लुप्त जाए और उमको दुबारा पावे
के लिए पुन उठना ही मूल्य क्यों न
दाता पड़े। दूबारा और अपरिग्रह
वाद या हृदय परिवर्तनवाद एक
और मूल्य के मामल में नहीं मरता
और साक्षिण है, वहाँ उमने मूलभ

फल, बहुत दर में प्राप्त होकर, अना काउ हा कारे के कारे ब्यापार को मँहंगा बना देता है। कां कहता चाहिये कि साम्यवाद यदि Short cut 'लघु-पथ' है—पट्टाओं, फॉट कवडों आँधा पाना और अधकार म मरा, किन्तु, निम पर का नमा कि बिजली चमक उठती है तो मचिल भी दीग जाती है, तो अधरि प्रहवाद Long cut 'दीप पथ' है—एक दम अधाध आर प्रमाश पुरित, किन्तु इतना सुविस्तृत कि मजिल क स्थान पर दूर तक स्थिति हा स्थिति दिखाई जाता रहता है।

कह चुका है कि प्रयाग दाना क हा त्रिय गय है—बहुत सुदूर अतीत म और निम्न प्रतीत में भी, सुदूर अतीत में, एक प्राग दरान रहित हृदय परिवर्तनवाद का प्रयाग महाकार ने किया था, फलत आन सगार म चारह लाख तमास्थित जन मानुषाया हैं, आर तमा उगी समन क आरपान दरान महित समान-परिवर्तन का प्रयोग मुहम्मद ने भी किया था, परिणामत सगार म दूगरी भवत बड़ी प्रमादा नया स्थित मुसलमाना की है और अभी कुछ हा दिना पहले—निम्न अतीत म हृदय-परिवर्तनवाद का निम्नवाद का प्रयोग, हमारी आँवों के सामने गाँधीजी ने किया था—अपने ही

देश म, फलत जैसा जो हमारी स्थिति है, प्रत्या ही है, और गाँधीजी स कुछ ही दिना पहले 'बलवाद' या 'अधिका-वाद' का प्रयोग, स्वयं म लीग ने किया था, फलत, कहा जाता है कि स्वयं फलत सुधा और समृद्ध हा है, किन्तु आन सगार का प्रथम शक्तियों म स एक है, प्रथम प्रयोग स्वत गिद्ध प्रमाण है इत नचाइ का कि एक Long cut है और एक Short cut

यस, इतन अधिक, अत म कुछ त नूंगा—स्वत इतना ही कि दोनों ही माग हमारे आन सगारने प्रगप्त है। तुताय हम कर लेता है कि किम और हम चल पड़े। अत, यह मग नहीं, आपका भी नहीं, नलिफ दानों हा भागों क समथकों का कत-थ है कि वे, कवन हवाँ वानों म नहीं, बरिफ प्रत्या टोष प्रमाओं क आघार पर ही हमारे आन क सम्पुग प्रदर्शित प्रेरित करें कि नया उताग पन अरिफ भेयकर और प्राह्य है। तहाँ तक समुचित क्षेत्र का प्रशन है, निश्चय ही यह निम्नदारी महावीर ने प्रन-थ अनुदाया टा पैतिया ने कथों पर है कि जो, दुर्भाग्यवश, आनतक अपने सामूहिक सनहार मे विपरीत आनस ही उपस्थित करते आण है

श्रीर इस प्रकार लोगो को बाध करते आण हैं कि वे महावीर क राद का सदैव ज्ञान रूप में ही समझने रहें कि वे महावीर राणी को आचरण की सफलता श्रीर गाथना प्रदान करें श्रीर जहाँ तक 'यापक नेत्र का प्रश्न है, अवश्यमय, समस्त भारत का ही यह नैतिक दायित्व है कि यह भारतीयवादा या 'आत्म विमर्शवाद' को आचरण की गरिमा से मञ्जित कर समार को दिशा जान देने का प्रयत्न करें, इसलिए कि यदि ऐसा नहीं किया

जाता— या यदि ऐसा किया जाना यदि असम्भव ही है तो निश्चय हा, जोड़ भा शक्ति, जोड़ भा विचार धारा, जोड़ भा नीति ऐसी नहीं कि जो चौराहे पर गड़ी दुनिया को सहज सुलभ साम्यवाद का दिशा का श्रीर उन्मुख होन से वर्जित कर सके—उम साम्यवाद को श्रीर कि नियम प्रत्यक्ष प्रकाश रूप श्रीर जान क प्राणश को दीक्षित कर रहा है, श्रीर यह दुनिया को कि जो चला क लिए आने आपम मन्तूर है, विश्व है—बचल है !

अन्धकारसे प्रकाशमे

मधुकर

जायन को लाश्रो ज्योतिमय ।

अन्धकारसे प्रकाशम ।

दृष्ट दुग्धर रुद्धि प्रधाएँ,

मानवनी मय घोर यथाएँ—

मिट्टा सरेँ वह बल हमरो दो—

नय उमग स, नई आश म ।

यम त्रस्त धरता के ऊपर,

भरे शान्तिना निमल निर्भर,

नृम बन सतम तगत फिर

शीतलता क नय प्रवाद म ।

भागोलिक यह भद न मानेँ,

अरनी सामाएँ पहचानेँ,

बमुधा बने कुटम्ब एक फिर

हट निमिर अय उपोत्लासम ।

संस्कृति बनाम रीति

हमारा देश धर्म और संस्कृति

श्री रत्नेश 'सुसुमाकर'

(कहानीकार, कवि, पत्रकार)

प्रधान रहा है। यहाँ अनाथ बाला, ईश्वरार्थी, मनमता-तुरों ने जन्म लिया, वे विकसित, पुष्पित, और प्रवृत्ति में हुए और अपना चमकदार छौड़कर इतिहास और शोष का बस्तु बन गए। काल के गुण अशा प्रगाढ़ में घड़ी धम, घड़ी में उक्ति अपनी गरिमा अलुण्ण रख गया, जो सत्य के सतत अत्रेपण का मूल प्रवृत्ति पर आधारित था। कही कारण है कि जहाँ अनेक संस्कृतियाँ के भवन गहन-हर का घर, जहाँ भारतीय संस्कृति के मंदिर का फलश आज भी अपनी प्रियी आभा से विश्व को आलीकित कर रहा है। इतिहास गाड़ी है, पश्चिमोत्तर सीमांत और सामुद्रिक मार्ग में यहाँ विदेशी आक्रामकों के कई आग, तुफान का चण्डर उठ, कि सु अत में भारतीय जीवन और संस्कृति के प्रशान्त महासमुद्र में हुदबुद के समान उनको त्रिलुप्त हो जाता पड़ा।

तब और विज्ञान का हमारी संस्कृति ने अभी विरोध नहीं किया, लेकिन जैसे जैसे समाज नियन्त्राओं

ने अपने स्वार्थ को दीर्घजीवी रखने के लिए संस्कृति का मनमाना अंग लगाता प्रारंभ किया, वह, जहाँ से वह विवृति बन गई। संस्कृति के निम्न जल में घग वैषम्य के पीड़ किलबिलाने लगे। शासन और शासित, शोषक और शोषित एस दो दल में सारा समाज बट गया। पहले गुण और जमजान प्रतिभा का विशेष स्थान था, अब वर्ष विगप में नाम को प्रधान स्थान दिया जाने लगा। इस विभेदालमक प्रति ने व्यक्ति और समाज को गडुगित बना डाला। इसका प्रभाव बला शीशल और आधिप शोषों पर भी पड़ा। धन की पूजा होने लगी। बहुरता ने आगत जमा लिया। बनल शगरभोत के शर्दा में इसकी महजिक प्रतिक्रिया यह हुई कि "शताब्दियाँ तर स्वतंत्र राणी को परमात्मा के साथ धप

मान जनक समझा गया। इमान
 दारी से अपने विचार प्रस्ट ररो
 स बढ़कर कोइ बात अधिर
 'आस्तिर' नहीं समझा गइ। युगो
 तरु बुद्धिमानों क मुँह गिले रदे।
 निर मशालों की सत्य ने जताना
 था, नि० गाइस ऊपर उटाकर
 ले चलता ग, व रत्त म उभा दी
 गइ।" हम प्रतिक्रिया क युग की
 दश क प्राणणवाद। अथवा मर
 दुख दात पर चढ़ाकर भी टिकाव
 रगा। हिन्दुवाद म गीतम और
 महावीर न दस- नीरामूला का
 उपाइ मरु। य नया उद्घाष,
 नद वाणी और नद दियाम्भा लकर
 सामने आथ। गादा चारा, उच
 निचार, सरलता आर "दुडुना,
 कथनी एन करना का साम्य उनने
 विद्रोह न आधार थिना थी। फल
 यह हुआ कि समाज की चिन्ताधारा
 ने एन नया मोड़ लिया आर इ
 त्तों की अथना लिया। पर यह
 मम शक्तिर काल तक नहीं टिक
 सका। राजनैतिक उतार-चढ़ाव
 और आर्थिक-मनों की क्रीयता
 न हमम भा अनेतिक तत्वा का जहर
 घोल दिया। भिन्न मर्षा म भ्रष्टाचार
 फैलन जगा। उनमें चारित्रिक
 सम्पनि न रही। उनका योगलापन
 (शीम ही सगई बनकर) सामने
 आ गया। प्रदर्शन और कर्मकाण्ड

मुख्य हो गय। इत प्रकार रास
 गाम्भृतिर जावा अवनति और
 इन्द्रजालिक माया के धूम्रम पर
 दौड़ लगाते लगा। हमकी फलभुति
 हमें आत्मकाल की पराधीनता क
 रूप में उपलब्ध हु।

हिन्दु युग-चतता के ज्वार ने
 हमरी बड़ियों क वधा दूध-दूध कर
 दिया है। आत तो हम हमारी
 गम्भृति का नया अर्थ और नया
 रूपविधा स्थिर करना है, ताकि
 अगुला क पोरा पर मुश्किल न गिने
 जा सकोे वाले 'मगरमच्छों' क
 स्वध काल म समाज की अगथित
 मीं फँस न सकें। और न अथसर
 भागियों, तथा श्रम से बनराने वाला
 एन विशिष्ट वर्ग ही इसे अपने एरुनि
 कार की घम्टु मान लो की
 गतनी दुहराएँ।

सरदृति की पहचान समाज के
 रहन सहन, आचार विचार और
 उसक ढांच स होनी है। वहाँ एक
 लाग क पाड़े एक एनार गुलडरें
 और येन की बसी बनावें, शप
 मुड़ा भर दाने के लिए दम तोड़ते
 हैं, वहाँ म कृति का स्वरूप यदि
 गहित, विरलाग तथा रुत मिले
 तो आ नय ही क्या! गम्भृति की
 सास स्वाधीनता है। और स्वाधी
 नता का अर्थ परिश्रम और पुराने
 वस्तुओं का नूतन मापदंड विधारित

करना है! तहाँ तक सस्कृति का स्थापना का प्रश्न है, यदि वह स्थापन की मूल समस्याओं का समाधान नहीं करती वा अपना अस्तित्व ही गंभीर दगा। सस्कृति में सस्कृत बना मानव अस्मृत हो जायगा। और अस्मृत मानव, मानव नहीं होता, दानव होना है।

आज का चलत प्रश्न है गी। कि दो अक्षरों का जोड़ा केन्द्र का दो अक्षरों में कद अन्वियाँ की लक्ष्यवाली ज्वालाएँ खिरी बैठी हैं। जीवन का कटु सत्य है कि जब पट खाली होता है, तब न तो धर्म की बातें मुहावरी हैं और न सस्कृति का उपवन में ही माँ सुँर करने को कहता है। पट की आग में विश्रामित जैसे अचल अक्षर लक्ष्मी की जड़ चाण्डाल के घर में घुस मृत शरीर की टाँग खा लेने को उद्यत कर देती है, तब जनमाधारण की भूमि और उसकी करालता, क्या तहाँ करा सकेगी! प्रास की रायनाति का मूल में भूल ही थी, त्रिभुने इतिहास के लोकाँ मोटिह को एक नई गति दी। अत

यदि सस्कृति रोटा की समस्या हल नहीं करती है, तो उसकी उपयोगिता ही नष्ट हो जावेगी।

तहाँ तक सांस्कृतिक क्रांति के लिए पृथ्वीमि तैय्यार करने का सन्ध है, “यन् सन् नन् तश्चिन्म” तो है यह क्षणिक है, नजर है—ये नारे से हम बचना होगा। नहाँ तो यह एक ऐसा मनोभूमिका निर्मित कर दगा, जिसमें दुनिया बदलने की निष्ठा समाप्त होकर एक प्रकार की पलायनवादिता आजायगी। यह पलायनवादिता एक स्पष्ट पतरा है।

एक नई राष्ट्रीय सस्कृति के निर्माण में हमें जुटना है। इसकी आधार शिरा के रूप में शरीर धर्म की प्रतिष्ठा तब तक नहीं की जाता, रोटी की समस्या नहीं मुनमेगी। और जब तक रोटा का सत्य मुलम हल प्रस्तुत तहाँ होता, कोई माँ सस्कृति जाति नहाँ रह सकती। अत धर्म देना का आगमन में सम्पन्न और भाइय प्रवेद दीनक संयोग के लिए हम सज्ज होना है, तभी नई सस्कृति का आलोच मानवना के उदय-परा की प्रशस्त कर सकेगा।

रुढ़िवाद का आग्रह छोड़िये ।

हिस्टोरी के पिछले सदियों के इतिहास ने हमें यह मानने की राह दिखाई है कि रुढ़िवाद ने हमारा बहुत कुछ सभ्रानाश किया है ।

कुछ मानस शास्त्रियों ने समय और परिस्थिति व अनुकूल समाज को अनिश्चित करने व लिए कुछ परिपाटियों का निमाण किया था । एक एक परिपाटी हमारा उम्र समय की समतुल्यता का समाधान था । उसमें सामयिक विज्ञान का गुणवत्ता थी । ऐसी एक नई नैकड़ा परिपाटियाँ, रुढ़ियाँ या परम्पराएँ जो समय व अनुकूल थीं ।' ज्ञान के धारक हैं । उनमें वतमान के अनुकूल परिवर्तन करने का परम आवश्यकता है । क्योंकि उन रुढ़ियों की आत्मा तो मर चुकी । अब बदरी व रूढ़ियों की तरह उनमें मृत शून्य की छाया सचिपकाये फिरने की काम करूँगे नहीं है ।

देश, काल और परिस्थितियाँ व अनुसार जो राष्ट्र आवश्यक परिवर्तन अपना सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और जीवन-नानियाँ में नहीं करता, वह पीछे रह जाता है, जमाना आगे बढ़ जाता है । युग किसी का इन्कार नहीं करता ।

लाली प्रसाद मेढा

साहित्य विचारक, सम्पादन 'मन्दार'

हिन्दी की भी गुलामी व भयंकर रुढ़ियों की दासता नहीं है । रुढ़िवाद जिसको हम कभी-कभी दक्षिणानुमी या अनुशासन या तर्क का—फकीर प्रादि नामों से पुकारते हैं—इसने हमें इस तरह पकड़े रखा है कि छुटपटा कर हजारों परिवार भी मुह म चेत गये ।

रुढ़िवाद की तरह में कुछ लोग न स्वाध, प्रभुत्व, श्रमकार और दुःख प्रपलन लग गये । उन लोगों के लोभा ने अपना जगह सुधार करने के लिए वृत्त लोगों को बाला में पहुँचा दिया । इन समय-व्यथादर्शियों ने जमाने के साथ निदयता का बनाव नहीं किया । लोग चान्त तो अभी भी इस मर-मुग्धी धारा की श्रौर जान में भाद्यों को रोज सक्त थे । ऐसा समय इन लोगों ने उठा लिया ।

उस समय ने समाज के मुह नमाचा लगाया तब लोगों को कुछ

ऐसी हालत है कि
 विद्वान् और सत्रग लागत म सींचा
 केना मनी हुद है। इद नग्द क मन
 म लड़े हो गय है। आपग म राग
 इप उरन हा गय है। समान म नाम
 म्दि मागों की ध्याति हाता जा रखा
 है। पररसक रोह टूटना नाग्हा है।
 क विचार, इद भद, इद मलिनतावे
 पर करनी ला जा रखा है। इदि फोद
 इल प्रकरण करे नो उसे दिगाइ दगा
 कि समान की चढ़ों में एमे गूह्य नाटा
 गुप्तों क दल दल उमे छागना करन
 गे जा रहे हैं।

इदियाद ने समान का नियंत्रित
 कि नो तो लागू और तनर कर
 दी दिया लेना ग्ना मरीय अमार,
 इमे-वड़े और ऊत नीय क रटीले
 नो, समान की छाया पर गमा लिये।

इदियाद ने जीवन को विभाजित
 कर करे छोड़-छोड़ दालर उना लिये।
 डाकी रेगाधों म बाहर निकलने हा
 इद्वारा जीवन दिन भि त हो जाग्या
 म्मे भय और उभाता न मनुष्य को
 तनर ही भावर गना दिया गया है।
 इसरी सहाय न मग्गुण म्गातिर
 नीय विगत हो गुहा है।

इदियाद त मनुष्य क एत म

इननी मोटी नवीरे डाल दी है कि
 यह उतां यथा हुय्रा लपना रना है।

हमार लिखो ना यह विलुप्त
 अथ नहीं है कि समानगुनीय नैतिक
 आपरा का मिटाकर मनान का उच्छृ
 गल हा जाता चाहिए। मयादाण नाइ
 डालता चाहिए। नाह मयध की
 ताकर पनु न समान म्गवना
 कगा चाहिए। हमार ना पय ना
 मिय इतना हा है कि-इदिया म न
 तनर निकल गया है, इसलिये समान
 न अनुकूल, नशा म्गात रना ना
 गुप्तान करना चाहिए।

ना इदिया समान का प्राधिर
 और नैतिक शक्ति का गण पर रही
 है, उताइ म्गना कर दता चाहिए।
 तना युग है, म्गलिय तथा इ मात
 बनत ही और अग्रसर राना चाहिए।
 विगम आपरी प्रागाता पीलिया हा
 यह इदियाति का विशान विनाय
 त र म म।

म्लभूत आधार, विनाय म्दम
 विनाय और प्रियादा प्रागत
 त दर्शियों त दिया है, तनर उता
 त म्गार म्गु कगा ना प्रगाता डलता
 चाहिए और इदियों क तनर ना
 किन विद्वान् क ना ना है।

अजीव सवाल

(कहानी)

हो मरता है इसपर पहिल मुझ

इस भित्तारी की आवाज़ मरश लगी
हो और इसका इस वक्त रोन मरे
पर के सामने स गाने हुए गुनरना
पुरा लगा हो, किन्तु आन तो मैं
कभी से पड़ा पड़ा जाग रहा हूँ और
सोच रहा हूँ कि न जाने खेरा कय
होगा और नय वह भित्तारा मला
हुवा आवेगा ? म आज उगी का
इन्तजार कर रहा हूँ ।

क्योंकि कल रात कॉलेज में
सांस्कृतिक कार्यक्रम का अवसर पर,
भित्तारा का कुशल अभिनय करने
पर, तो मुझ परा प्रात हुवा या
उसका श्रेय इस भित्तारी को ही था ।
इस भित्तारी म ही मैंन मन कुछ
मीला था । या यह कहुँ तो अधिक्
उचित होगा कि मैंने कल रात इस
भित्तारी की निवृत्त नरल मात्र हा
का थी । मगर मुझे क्या मालूम था
कि, इस भित्तारी की यह निवृत्त
नरल मान ही, मुझे इतनी शोहरत
दिलवा देगा ? और मुझ एक् कुशल
कलाकार बना देगी ! आन मरा
रोम रोम इमे हुवा दे रहा ह और

अद्रशेणर दुये

उदायमाण कहानीकार

म इतनी कनैनी से इतना इन्तजार
कर रहा ह । मुझे मिलने वाली
अप्रत्याशित सफलता ने पिल्लुल राग
द्वेष से मरे हृदय से बिलकुल
निकाल दिया है ।

मगर वह भला आदमी आन
अभी तक प्राया क्यों नहीं ? उजला
होने को है किन्तु नगकी प्रभानी
काम्बर मरे जानों से आज क्यों नहीं
टररा रहा ह ? जे, ? शायद वह
आ रहा ह ? हाँ हाँ यह उमीका
मर ह—'नागिव गोपाललाल भोर
भई प्यारे ।' मैं दूर स आने वाला
इस आनाच का साथ देते लगा ह ।
आनाच नकनक आती जा रही ह ।
म निम्तर छोड़कर चोर चोर से यह
गत गुन-गुनात हुवे, मरे से बाहर
निरल आया हूँ । हाँ हाँ वह नन
दोक ही आ गया है । मैं लपक कर
अपने अहाने न फाटक पर जा मक्का

हुआ है। यह भिकारी रोज की तरह अपनी छोटी मारगी बजात हुये, अपनी जुलुद आवाज में यह गीत गाता हुआ चलता आ रहा है। उसकी मारंगी की मधुर आवाज कंठ में बसत हुए धुँधलुओं की हर स्वर पर, मेरा दिन नान नाच उठा है। मैं सोचता हूँ यह कितना अच्छा बजाता गाता है। मने कल रात क्या क्या बचाना गाया था ? काल में भी इसी तरह गावता सन्तता। कितना आलाप लेता है, यह—'जागिय गोपाललाल भोर भद्र प्यार'—रहत हुये। बढ़ा हो गया है, मगर हमकी आवाज में कितनी मिठास है ?

अब यह मरे धिलजुल उजड़ीर आ गया है। आन मर मुँह न सहमा निकल पड़ा है—बाबा ! तुम्हारी आवाज में कितनी मिठास है !

बाबा मरी बात सुनकर गाना बंद कर महन हँस उठा है। रहता कुछ नहीं। कुछ दर तक उस फरक दर दरत क बाद में पड़ बैठा है—बाबा मरी बात सुनकर तुम हूँगे क्यों ? क्या तुम्हें खुद को अपना गाना पसंद नहीं ?

बाबा फिर हँस दिया। मगर हम बार बोला भी—भीया, बैगा गाना बाना ! पेट भरने का बहाना है।

मुझे बाबा की यह निराशापूर्ण बात अच्छा नहीं लगी। इसलिये मैंने हम बात को यही गतम कर कहा—बाबा मैं कल रात के खेल में बड़ा कामयाब रहा। लोगों ने मेरी बड़ा ताराफ़ की। मुझ मजल मिला।

बाबा हैरत से मरा बात सुनने लगा मने मरी वग से उस का नोट निकालकर, उस पर हाथों पर रख दिया और बोला—बाबा हम कामयाबी का तब तुम्हीं हो। तुम्हारे गेरा कपड़ों ने मुझ धिलजुल तुम्हारे जैसा बना दिया था। और जब मने तुम्हारी भोली बगैरा लटका ली थी तो इनहूँ तुम जैसा हा दीलने लगा था। तुम्हें यकीन नहीं होता, न ? मैं अपना उस बेश का फोटो तब तुम्हें बतलाऊँगा तो तुम भी मुझ नहीं पहचान सफेने। मर सब बात पहचान वाले और रोज मिलन वाले तब भी मुझ स्टज पर यकायफ़ पहचान नहीं पाय थे। अभी फोटो तैयार नहीं हुआ है। मैं तुम पर बतलाऊँगा। मगर बाबा मैं तुम्हारे जैसी मारंगी नहीं बजा पाया और न तुम्हारे हम गीत को इतना उठा हा पाया। लेकिन इससे रोद इन नहीं हुआ बाबा। मरा काम लोगों ने बेहद पसंद किया। तब तालियाँ बिरंगी गईं। मेरे बराबर फोटो लिख गये। मेरी

तारीफ़ का गइ। पदक़ दिया गइ।
अरु बाबा, म बाबा म लिलकुल
ह गया। मुक़ पर मरी रामबाबा
का नशा का चढ रहा है। अरु
आपोना। बाबा पुन बना मरी
मुं का रहा था। अरु यह बोला—
भया, एन तान पुडू ?

म। यह दिया—हा हा एन
नहा नार ताने पुडू। आन म
वदुन गुश न। शरमाया तही म्पयो
क बाबा रहत हा तो ला आर दग
ले लो।

बाबा यह पुन एनायन सोल
उना—नहा, नहा। यह बात नहा
ह। म यह नहा

मगर मन उलफ़ मना करने पर
भा दग का नाट, उलफ़ हावों पर
आर रग दिया। आर मुफ़रात
हुने बोला—अच्छा यह बात न
ह ना कना तान हे, पुडू ?

बाबा हिम्मत कर अब बोला—
भे या मुक़ तुम्हारा सन रग डग
अनाम लग रहा ह। मुक़ तुम्हारी
तुम्ह भी तान समझ म ननी आ
रहा ह। कन म ही—गुमन नर
स्वक़ चगरा मुक़म मांग थ, तमा
स—मग समझ म तुम्ह नहा आरहा
ह। मगर पूछा का हिम्मत नही
हुद भया। और आन य इतने
स्वक़ पाकर तो मरी रही सही

अरु भी गुम हो गइ ह। और
इम पर य तुम्हारा अनाव बाते।
गग रपड़ पन्नार, भोली लटफ़
रर, म। मका सारगी बना बजा
रर, मरे इम गीत को गाने पर
लोग का पाइ बाह ररा,
तालियों पाटना तुम्ह मडल देना,
तुम्हारा नाराफ़ करना, तुम्हारे
फाटा गीतना—य मर अनीर बाते
है या नहा ? म तो रात यहा कपड़े
पहन कर यही भोला लटफ़ कर,
यहा गान गाता हुवा, इर घर के
सामन म, अर मौसम म गुजरता
ह मगर मुश्किल न पट भरने
लायक़ आटा टटा पाता है। लोग
साव मुँह बात तर तो करत तही,
नाराफ़ करना तो दूर रहा। लोग
पर क सामने रपड़ तो रहने नहीं
दत “आग़ तडो” का नारा लगाते
लगन है। फोटा लेना तो दूर की
बात न। म गाना हुआ गुजरता
ह तो लोग कहते है—यह बुद्धा
मरा मुयह मुयह चिह्लाकर नींद
हराम कर दता है। तुम खुद भी
शायद फल्ले यही कहत थे न ?
मगर मैथ्या अर तुम्हें न जाने क्या
हो गया है ? तभी तो कहता हूँ,
मुक़ तुम्हारा रग डग अब समझ म
नहा आरहा ह।

बाबा यह रहकर चुप हो
(शेष पृष्ठ ८० पर)

श्री विहार, शुभ वसुन्धरे-अतिवीर-प्रसू-वर

हरिप्रसाद 'हरि'

मुगपुर से भी आज अलौकिक वरविहार है,
बहती रहती जहाँ शांति की सरस धार है ।
भूपर भी है अमर लोक आलोकित होता,
भये जहाँ सुख सलिल मग्री वर निमल सोता ।
कुन्दनपुरि भी प्राज बला की केलि-कुञ्ज है,
अलकापुरि से रम्य याकि न दन निकुञ्ज है ।
जहाँ उर्वरा धरा सदा धरती हरियाजी,
व्यक्त फर रहे ह नय पल्लव नूतन लाली !
सजी वाटिका जहाँ नाटिका सा पट ओढ़,
हस उठते हैं फून जहाँ धीरज सा छोड़ ।
फही भार से दबी जा रहीं ढाल डाल है,
दानवीर लड़ हुग दिखते रसाल ह ।
मग-मग में फर रहे विटप-रट निमन छाया,
पग-पग पादप-पुञ्ज दिखाते निज-निज-नाया ।
चलती सुरभि-समीर मञ्जु चांसरी-बजाती,
गज्जी-गली हर-फली मोद से है-खिल जाती ।
मिल जाती ह मधु-मलि-द की मोहक तानें,
लग जाती हैं मीठे-स्वर से कोयल गानें ।
विविध विद्गम गा उठते रसमय विहाग है,
जग आते जगती पर जितन मधुर राग हैं ।
आन स्वग की भी तो प्रतिमा मद हुई है,
भू-सौरभ से स्वग सुरभि निगध हुई है ।
अमर-लोक भी तो होता जाता है सूना,
बढ़ता जाता है भू फा गौरव दिन दूना ।

जब से त्रिशना ने सोलह सपने देखे हैं,
सोते म, ही सजग भाग्य अपने देखे हैं ।
अमर लोक म भी पैला यह खुदाहाली है,
जगपति को ही जग-जननी जनने वाली है ।

सप्रमोद इस मोदमयी चचा को सुनकर,
उमड़ पड़ा सुर लोक सभी आने को भूपर ।
श्री, बिहार ! वर वसुधर " तू इसी पात्र है,
अलकापुरि का सुदरता कपना मात्र है ।

यह उठती कल्पना उठा खिलती-कलियों से,
नूम रह मुख चूम रहे प्रेमी अनियों से ।
में भी लेश्वर फूल गोद अपनी भूमूगी,
चित्रित सी हो, चित्र देख, झुंर मुख-चूमूगी ।

गोदी का जब लाल किलक खिल हस जायेगा,
तब आशाआ का नवीन जग-बस जायेगा ।
मेर भी अतर के इस सुने उपवन म,
कोलाहल से रहित मुसद इस राज भवन मे ।

मां, ओ मां ! यह प्यारा शब्द प्रवाही होगा,
तब कितना आनन्द सुधारावाही होगा ।
विविध भाति काड़ा धरना हस खेल मचलना,
पीर गीर धरणो पर गिरना फिर चलना ॥

यह मिठास से युक्त और अ-यत्त अमोली,
कितनी मोदमयी होगी वह तुतली बोली ।
रोने मे भी कितने गीत भरे प्रिय ह्रागे,
देने को सतोष कल्पनामय हिय होंगे ।

इस प्रकार यह विविध कल्पनाआ के धन से,
रानी होता धना पुनरती अतर मन से ।
अपने म ही सोच अतुल जो आनन्द पानी,
लघु लेखनी भी लिखने को सहसा-रुन जाती ।

सम्पादकीय—

संस्कृति का प्रश्न आज की परिस्थितियों में बुनियाद का प्रश्न है। हम चाहें भौतिकवादियों की आँसों में तड़कना व किसी भी आसमान पर क्या न पहुँच जायें। किन्तु यदि मार्थननिष्ठ और वैयक्तिक जीवन का नींव में—आध्यात्मिक शिलाओं का बल नष्ट होगा तो हमारी गुणवत्ता का गौरव भौतिक तत्वों के हलके से झटके से धराशायी हो जायगा। तो यह जरूरी है कि हमारे आध्यात्मिक उत्थान के प्रासाद की शिलाएँ मजबूत और चननदार हों।

वे जो ऊपर से मौन रहते हैं और भीतर से निर्मल और विमल होते हैं, इस तरह के उत्थान सुखी महान की पहली शिला होते हैं। संस्कृति का चरण चिह्न, संस्कृति का पैमाने इन्हीं महापुरुषों की जीवन क्रियाओं द्वारा बनने दें। यही यथार्थत्व है निगमों धरती का धैर्य और आसमान का औदार्य रहता है।

वर्तमान ज़िन्दगी की सबसे बड़ी ऊँचाई है। व उस शिखर के प्रतीक है जहाँ हमें अपनी सम्पूर्ण घुटियाँ की आलोचना के साथ निरन्तर विमल होना ही पड़ता है। विश्वास रखिये—जैसे ही हम यह मजिल हाँके हमारा पतन हमारे सामने मौत-सा मुह धाये खड़ा होगा।

मरणाह ने मौत से मुनासला किया, व जाते और दुनिया का उनका सामना था। गौतम ने कष्टों की बरसात की, और दुनिया को अडिहा का पानी पिलाया, अभी हरे भरे हो उठे। इसी तरह महावीर ने भी इन सबसे पहले एक ऐसा गभीर स्वर घोष किया निगमों मन्त्र मन का मैल फाटा, उन्हें पास-पास किया उनपर उरगा अडिहा और अपरिग्रह का गगन किटका, सब प्रफुल्ल हो उठे। उदारवक का ममता चितनी इन प्रतीकों में जीवित है, जिनका माता और उनके प्रकृत मुत में छोड़कर समझ है कहीं भी जगने की न मिले।

तो, अब हम अपनी सम्पूर्ण भौतिक दुविधाओं को छोड़कर, समाज का विविध परिग्रहवादी चिन्ताओं, मार्क्सवाद, समाजवाद, साम्यवाद, रामेश वाद, को

छोड़कर अतिरिक्त श्रेय और त्याग के उस आश्रय को ग्रहण करें जिसकी नींव पाताल में है। इसमें अतिरिक्त श्रेय नितो है पाना ने बुल-बुले और मन्थल की मरीचिका से अधिक नहीं है। समृद्धि की पुनियादा मान्यता यही है कि हम बाह्य का अपना प्रत्यक्ष को ही अधिक समृद्ध और वैभवाशील बनायें। जो बाहर से जितना साफ सुथरा होगा, वह दुनिया का आकाश में उतना ही उचा उठगा। अतः बन्धु की मालगिरह पर इससे अधिक स्तार और निमल प्रवृत्तता सा होगा कि हम बाहर भावना से साफ सुथरे धन मान्यता की अपन आप में अधिक से-अधिक गिरावें और हम को जितनी ही अत्यन्त निवृत्त कर दें।

(पृष्ठ ७६ का शेष)

गया। मेरे मुँह से कोई जवाब नहीं निकला। बाबा समझा कि मैं नाराज हो गया हूँ। इसलिये वह हाथ जोड़कर कहने लगा—भैया मूरग आदिमी हैं। काइ गलत बात कह गया है तो मूरग समझ कर माफ करदी भैया।

अब मुझे कहना पड़ा—नहीं नहीं बाबा, मैं नाराज कतई नहीं

हुवा हूँ। बल्कि तुम्हारे इन टेढ़े सवालोंने मेरा जवान बन्द करदी है। छोड़ो इन बातों को। आओ तुम्हारा सामान ललो।

मैं आगे आगे हो लिया हूँ व बाबा मेरे पीछे पीछे। मगर मैं सोचता जा रहा हूँ कि बाबा के इस अनीस मजाल का क्या जवाब दूँ ?

प्रकाशकीय—

निश्चय ही हम भगवान महावीर का जन्म दिवस एक लम्बे असें से मनाते चले आरह हैं। इंदौर में इस पुनात परम्परा का स्तपान का श्रेय बाबू सरचमलना जैन को है। बाबूजी ने, अपनी अप्रय प्रतिमा और तेजस्विता से उन दिनों चरकि सार्वजनिकता का औषध का सिद्धान्तों में की विरवास न था, विविध कठिनाइयों का बाबूजी भी धीरे जयती मनाने की परिपाटी का शिलान्यास किया। सबसे पहला जयती मन् १९१७ ई में सपूर्ण सार्वजनिक रूप से आयोजित की गई। यह वह जयती थी जो अत्यन्त सार्वजनिक स्तर पर जनता का अधिकाधिक सहयोग से मनाई गई थी। इन जयती समारोहों में बाबूजी को जैन तदुपाई के अजस तूफान की प्रतीक भी बढ मान ज्ञान प्रचारिका मर्मित स स्मरणीय सहयोग मितना रहा।

तत्पश्चात् नवयुवकों की बाबूजी का निरन्तर भाग दशन मिलत रहने का कारण का क्यों तत्र जयती का कार्यक्रम उत्साह, उमंग और आस्थापूर्वक मनाय जान रह। किन्तु नैम हा बाबूजी की अप्रयक और अनिवाय क्षति हुए नवयुवकों का सपूर्ण बोध समाप्त हो गया, उस पर समझान-सी निष्क्रियता बिल्ल गई, एत शून्य सा बन गया और शनै शनै इस तरह अनेक कठिनाइयों से शुरु हुए हमारी यह विमल और बलवती परम्परा नवयुवकों का आकस्मिक अनुत्साह, प्रमाद और निष्क्रिय तवों से समाप्त सा हो चली।

निष्क्रियता का वातावरण अधिक दिनों तक नहीं चल सका। शून्य के ज्वालामुखी से तदुपाई की ज्वालाए फूट निकलीं—अकर्मण्यता और गमाइट का इन क्षणों में श्री महावीर जैन नवयुवक मडल ने जयन्ती समारोहों में अपनी उमंगों से पुन नये प्राण फूट दिये और वह और भी अधिक सार्वजनिक रूप से मनाई जाने लगी। तत्पश्चात् नवयुवकों ने नये उत्साह में नैसे हा कोई कमी महसूस हुए, उनके जोश में कोई फर्क आया कि श्री मिथीलाल सोनी तथा इंदौर और सयोगिता गज के अन्य नवयुवकों के प्रयत्नों ने जयन्ती के कार्यक्रमों को मुन्द सार्वजनिक रूप दे दिया।

अपने अज्ञान की इस प्रतिष्ठा और परम्परा न अनुसृत पिछले कई वर्षों से इन्दौर का चैन जनता अधि-अधिक प्रभावना और मार्गनिष्ठा व साथ इस पर को मना रही है। दुनिया के घूमे किये अनुसृष्टी निचारक राजा फालेलकर, नन्दवेत्ता विद्वान् महात्मा भगवानदीन एव हिन्दी के नेत्र्यी लेखक श्री जैगोत्र कुमार ने भी जयन्ती के इसी मन्त्र से भगवान् बद्धमान के जाननदायी सिद्धार्थ की घोषणा की।

जयन्ती के इस गौरवान्वित इतिहास को जयन्ती ऐसी कोई बजह नहीं रह जानी कि हम यहाँ सहस्रों की सख्या में होने हुए भी, उनका अपक्षा जो इकाइयों में भा नहीं गिने जा सकते, हम उत्साह और उमंग से अपने इस राष्ट्रीय मूल्य के पर को मनायें। वास्तव में हमारे प्रयत्न तो जयन्ती को अधिक से अधिक बड़े पैमाने पर मनाने के होने चाहिये और होने चाहिये कि यह पव अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर सके।

मुझ विश्वास है कि चैन जनता सहयोग, आस्था, विश्वास, श्रम, उमंग और उत्साह के साथ इस पर के, इस प्रकाशन को अधि-अधिक मार्गनिष्ठा और शानदार परम्परा दगी।

—गुलाबचन्द सोनी

विचार-कण—

१—पूण अहिंसक मनुष्य ही मुक्ति पाता है ।

२—जिसके हृदय में पूर्ण अहिंसा विराजता है—

[क] वह किसी मनुष्य से उसके विचारों को बदलने में या प्रभाव नहीं करता ।

[ए] वह मनुष्य मनुष्य में भेद नहीं करता ।

[ग] वह अपने विचारों का जो सत्य और दूसरे के विचारों को मिथ्या प्रमाणित करने की कोशिश नहीं करता ।

[घ] उसका हृदय पृथ्वी की तरह विशाल होता है । जैसे पृथ्वी उच्चानिउच्च को और नीचातिनाच को, पवित्र में पवित्र और अपवित्र से अपवित्र को, अत्याचारी और अत्याचारी पीड़ित को, दुग्ध और सुग्ध को, उसका पट चीरने और उस पर हरियाली उगाने वाले का अपनी छाया पर समान स्नेह भाव से खेलने-कूदना देती है, उसी तरह पूर्ण अहिंसक भी सब तरह के पापों को अपने विशाल हृदय में स्थान देता है । उसका सब तरह की उराइयों या भलाइयों को भुनकना है । वह कबल यह समझता है कि ये राम द्वेष से पाड़ित जीव हैं । इसलिए ही सने तो इनका भलाइ करनी चाहिए । अगर उनका भलाइ शरीर से न हो सके तो उचन से और मन से करनी चाहिए ।

[ङ] उसकी दया चादनी सगार की तुल्य अग्नि से जलते हुए सभी प्राणियों को शीतल बनाना है ।

[छ] अहिंसा के भावों से जन्मा हुआ उसका कल्याण किरणों सभी को बल देती है, सबके हृदय-कमलों को विकसित करती है ।

[ज] गुणों और निगुण, मूर्ख और बुद्धिमान्, जानी और अजानी, स्वार्थ-परायण और निस्वार्थ सभी अहिंसा में समभावी बने हुए उसका शान्त हृदय से कल्याणकारी आशावाद पाते हैं ।

भगवान् महावीर इसी तरह के अहिंसक थे । उन्होंने इसी अहिंसा में, लुप्तमानस्यता में आनन्दगाय और मनपावस्था में मौन्य भी उपदेश दिया था ।

दि इन्दौर मालवा पुनाइटेड मिल्स लिमिटेड, इन्दौर

जय हिन्द

तार—“मिस्त्र” इन्दौर

फोन नं ५००१ और ४८७

हर प्रकार के

आकर्षक और मज़बूत

कपड़ों के लिये

हमेशा याद रखिये

दी कल्याणमल मिल्स

लिमिटेड, इन्दौर

सेवा और स्वदेशी हमारा ध्येय है

मेनेजिंग एजन्ट—

मेसर्स-तिलोकचन्द्र कल्याणमल

एण्ड कम्पनी, इन्दौर

मगलमय महावीर के पुनीत जन्म की
स्मरण-वेला में

सुपरफाइन कपडे के लिए मध्यभारत का
—एक मात्र स्थान—

जिमे आप सदैव याद रख सकते है

दि हीरा मिल्स लि०

उज्जैन

द्वारा निमित्त

- ★ सुपर फाइन धोती जोडे
- ★ फाम्बड सूत की मलमल
- ★ ऊँची जात की जगन्नाथी, हरक
- ★ पक्के रंग की माड़ियाँ, पातल
- ★ हरक, चादर, लुगड़े

आँर

नित्यप्रति उपयोग में आने वाले वस्तुओं की प्राप्ति के लिये

मैनेजिंग एजेन्ट्स

सर सरूपचंद हुकमचंद एन्ड-

कम्पनी, इंदौर

टेलीफोन नं १०६

तार का पता -NAND

स्वदेश की उत्पत्ति कीजिये

और

गृह-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दीजिये

दि नंदलाल भण्डारी मिल्स

लिमिटेड इन्दौर

१९२२ में रजिस्टर्ड

हमारी विशेषताएँ

सर्व प्रकार के कामों के लिये सर्व साधारण की मजि का सम्रा
एवं उत्तम नित्य के व्यवहार योग्य, नये प्रकार का टिकाऊ
व्यवहारना की आवश्यकता पूर्ण के लिये

सब प्रकार का कपड़ा

कोटिंग्स टिक्स, लुट्टा फ्लेन और फेन्सी शर्टिंग, टायेशम
और नेपकिस घोटिया और साड़ियाँ, दो सूती
और मजरी, प्लाकेटस और दरिया

शिल्प चातुर्य और परिश्रम हमकी सफलता की कुञ्जी है

एनेन्स

दि नंदलाल भण्डारी एण्ड संस

हेड ऑफिस
मिल्स बिल्डिंग

कपड़ा दूकान

२१, एम टी क्लॉथ मार्केट

विनोद मिल्स लिमिटेड, उज्जैन

(दीपचन्द मिल्स सहित)

श्रीमत् सिधिया नरेश, राजप्रमुख मध्यभारत संघ द्वारा सरचित्त
हमारी कई विशेषताएँ

१ कपड़ा—उपयोगी सस्ता, टिकाऊ, सभी प्रकार का। जिसे लोग
बड़े चाव से खरीदकर उपयोग में लाते हैं। एक बार अवश्य छात्री करें।

२ एक्सपोर्ट काटन वूल—खात्री में भारत सरकार द्वारा पसन्द
मध्यभारत, राजपूताना आदि प्रांतों के सरपतानों में काम में लिया
जाता है।

३ लिट्ट—इसे हमने अभी चालू किया है। बम्बई की एम्ब्रिल
ट्रेसिंग कम्पनी ने पसन्द करके अभी उद्योग तालान में खरीना है।

४ आर्टिफिशियल सिक्क फ्लाय—तरह तरह के पे-को और
रग बिगो कपड़े मलमल, बड़िया आरत वापल व साटन बगैरह तैयार
किये जाते हैं।

५ नरेन्द्र केमिकल वर्क्स—

इसमें बेजेटेबल डेली, साफ्ट सोप, टर्की रेड आइल, स्पॉन्जिंग व ग्लेज
पेस्ट विनेटेकष फिनाइल आदि बनते हैं जो विनों में काम आते हैं।

मध्यभारत में एकही फेक्ट्री है। अवश्य इसके माल का उपयोग करें।

६ कैलाश सोप फेक्ट्री—इसमें बलिया क्रिम का साबुन नहाने व
कपड़ा धोने के काम का तैयार किया जाता है जो कीमत में सस्ता है।

७ भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स—नरेन्द्र आइल मिल्स
—ये दोनों कारखाने भी चालू हैं।

उपरोक्त वस्तुओं को अवश्य एक बार

खरीद कर परीक्षा करें

दि विनोद मिल्स लिमिटेड उज्जैन

मैनेजिंग एजन्डम—मेसर्स विनोदीराम बालचन्द बेंकर्म

पूर्णतया भारतीय पूजा और थ्रम के
उपयोग पर निर्भर

देश में अपनी विशेषताओं के लिये विख्यात

दि गेंदालाल मिल्स लिमिटेड

जलगाव

को

महावीर जयन्ती के पुनीत अवसर पर

याद रखिये ।

★ कोटिंग, शट्टिंग, काजा लट्टा, घोती, साड़ी, खादी

★ दो खली काली भलमल तथा विविध जात का कपडा

★ मिलने का एक मात्र स्थान

दि गेंदालाल मिल्स लिमिटेड

जलगाव [पूर्व खानदेश]

फोन नं ३५

तार 'कमल'

शाखा

वडजात्या विल्डिंग, बरा सराफा, इन्दौर

फोन नं ४३२

तार 'वडजात्या'

तार का पता राजशोप

टेलीफोन—४१३

भोजन शरीर के लिये जितना आवश्यक है उतना ही स्वास्थ्य और शरीर रक्षा के लिए वस्त्र भी आवश्यक है।
जीवन की इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए:—

डी राजकुमार सि. लिमिटेड,

इन्दौर

आपकी सेवा में सदैव प्रस्तुत है !

—: यहाँ —

सब प्रकार की आवश्यकताओं के लिए उन साधारण की कृति का सस्ता एवं उत्तम नित्य के व्यवहार योग्य टिकाऊ और सुन्दर सब प्रकार का कपड़ा समय और सुविधाजनक उपलब्ध हो सकेगा।

हमारी विशेषताएँ—

हरक, वायल, सफ़ेद रंगीन एवं प्रिन्टड, लट्टा, मलेशिया, शर्टिंग, पक्के रंग की सुन्दर डिजाइनदार छांटें आदि।

मेनेजिंग एजेन्ट्स:—

सर सरूपचंद हुकमचंद एन्ड कंपनी

ब्लॉक शाप:—एम टी ब्लॉक मार्केट, इन्दौर

तीर्थकर महावीर के पुनीत जन्म पर्व पर
हम आपका अभिनन्दन करते हैं
दैनिक जीवन के आवश्यक वस्त्रों के लिये
एक मात्र विश्वस्त स्थान—

दि हुकुमचंद मिल्स लिमिटेड

इन्दौर

को याद रखिये

हमारी विशेषताएँ—

★ पक्के रंग की चोल

★ पक्के रंग का साडिया और पातले

★ पक्के रंग की सुन्दर डिझाइनों की छोटें

★ शर्टिंग, कोर्टिंग, टॉपेल्स, मलमल, हरक आदि

भारतीय मिलों में उत्कृष्ट बुनाई, मजबूती और

आकर्षक डिझाइनों के लिए प्रख्यात

मेनेजिंग एजेन्ट्स—

सर हुकुमचन्द एन्ड मन्नालाल कम्पनी, इन्दौर

निश्चय ही हम भगवान महावीर का जन्मदिन एकदम ही
 ते चले आगे हैं। इंदौर में इस पुनात परम्परा का शुरू होना
 गुरुजमलजा जैन को है। बाधुजी ने, अपनी अपूर्व प्रतिभा और
 दिनों तक सार्वजनिकता का जैनधर्म के मितानों में इस
 धर्म कठिनाइयों का बावजूद भा वार चयता मनाने का प्रयत्न
 । अपने पहली चयती मन १६७ ई में संपूर्ण सार्वजनिक
 । यह वह चयती थी जो अत्यन्त सावजनिक स्तर पर
 योग से मनाई गई थी। इन जयता समारोहों में बाधुजी का
 न का प्रतीक भी चढमान शान प्रचारिया कर्म के
 ता रहा।

तत्पश्चात् नवयुवकों को बाधुजी का निराला
 का प्रयत्न तब जयता का कार्यक्रम उन्माह, का शुरू
 । किन्तु जैसे ही बाधुजी की अपूर्व और
 जोश समाप्त हो गया उस पर शमशान की
 बन गया और शनै शनै हम तरह अनेक
 ल और भलवती परम्परा नवयुवकों का
 ने समाप्त भी हो चली।

निष्क्रियता का वातावरण अधिक दिनों तक
 लामुम्बी से तरखाइ का ज्वालाए पूरा निराला और
 में श्री महावीर जैन नवयुवकों का
 गों से पुन नव प्राण पूरा दिये और वह
 लगी। तत्पश्चात् नवयुवकों के नये
 ने जोश में कोई फर्क आया कि श्री
 के अन्य नवयुवकों का प्रयत्न न

अपने अतान की इसी प्रतिष्ठा और परम्परा के अनुकूल पिछले कई वर्षों से इंदौर की जैन जनता अधिक से अधिक प्रभावना और सार्वजनिकता के साथ इस पर्व को मना रही है। दुनिया के घूमे किये अनुमयी विचारक माका कल्लेकर, तत्ववेत्ता विद्वान् महात्मा भगवानदीन एव हिन्दी के तेजस्वी लेखक श्री जैनेन्द्र कुमार ने भी जयन्ती के इसी मन्त्र से भगवान् वदमान ने जीवन्दायी सिद्धान्तों की घोषणा की।

जयन्ती के इस गौरवान्वित इतिहास को दफते अब ऐसी कोइ वजह नहीं रह जाती कि हम यहाँ सहस्रों भी सख्या में होने हुए भी, उनकी अपेक्षा जो इकाइयों में भी नहीं गिने जा सक्ते, कम उत्साह और उमग से करने इस राष्ट्रीय शूल्य के पर्व को मनायें। वास्तव में हमारे प्रयत्न तो जयन्ती को अधिक से अधिक बड़े पैमाने पर मनाने के होने चाहिये और होने चाहिये कि यह पर्व अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर सके।

मुम विश्वास है कि जैन जनता सहयोग, आस्था, विश्वास, धम, उमग और उत्साह के साथ इस पर्व के, इस प्रकाशन को अधिकाधिक सार्वजनिक और ज्ञानदायक परम्परा दगी।

—गुस्तावचन्द्र सोनी

विचार-कण—

१—पूर्ण अहिंसक मनुष्य ही मुक्ति पाता है।

२—जिसका हृदय में पूर्ण अहिंसा विराजती है—

[क] वह किसी मनुष्य से उसके विचारों को बदलने का प्रयास नहीं करता।

[ग] वह मनुष्य मनुष्य में भेद नहीं करता।

[घ] वह अपने विचारों ही को मर्त्य और मृतके क विचारों की मिथ्या प्रमाणात्मक करने की कोशिश नहीं करता।

[ङ] उसका हृदय पृथ्वी की तरह विशाल होता है।—जैसे पृथ्वी उच्चानिम्ब की और ग्रीचानिनीच की पवित्र से पवित्र और अपवित्र से अपवित्र की, अत्याचारां और अत्याचारी पीड़ित की, दुःख और सुख की, उष्णता पर चीरने और उस पर हरियाली उगाते वाले को अपनी छाती पर समान स्नेह भाव से, खेलन-नृदन तथा है, उसी तरह पूर्ण अहिंसक भी सब तरह के जीवों का अपने विशाल हृदय में स्थान देता है। सबकी सब तरह की तुराशियों या भलाईयों को पून जाता है। वह केवल यह सम्भत्ता है कि वे राम द्वेष से पादित नोके हैं। इसलिए हो सक तो इनका भलाई करने चाहिए। अगर उनकी भलाई शरीर में न हो सक तो उचित से और मन से करनी चाहिए।

[च] उसकी दया चिन्ता सगार की दुःखानि से जनते हुए मभा प्राणियों को शीतल बनाता है।

[छ] अहिंसा क भासा से जमा हुए उसकी कर्मणा निरुणें सभी को बल देती है, सबके हृदय-कमला की विकसित करने है।

[ज] गुणा और निरुण, मृत और बुद्धिमान्, शैली और अशिशी, राधा-वरायण और नि म्नाथ सभी अहिंसा में समभावी बन हुए उनके शात हृदय में कल्याणकारी आशीर्वाद पाते हैं।

मगजान् महावीर इसी तरह क अहिंसक थे। उन्होंने इसी अहिंसा का, हृदयभावस्था में अचरणा और सवजायुष्यो-स मोक्षिके भा उपदेश दिया था।

दि इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्ल लिमिटेड, इन्दौर

जय हिन्द

तार—“मिक्त” इन्दौर

फोन नं ५०५१ और ४१७

हर प्रकार के

आकर्षक और मज़बूत

कपड़ों के लिये

हमेशा याद रखिये

दी कल्याणमल मिल्स

लिमिटेड, इन्दौर.

सेवा और स्वदेशी हमारा ध्येय है

मेनेजिंग एजन्ट—

मेसर्स--तिलोकचन्द कल्याणमल

एण्ड कम्पनी, इन्दौर

मगलमय महावीर के पुनीत जन्म की

स्मरण-वेला में

सुपरफाइन कपड़े के लिए मध्यभारत का

—एक मात्र स्थान—

जिसे आप सदैव याद रख सकते हैं

दि हीरा मिल्स लि०

उज्जैन

द्वारा निमित्त

★ सुपर फाइन घोंटी ब्रोडे

★ कार्बन्ड सूत की मलमल,

★ ऊँची जात की जगन्नाथी, हरक

★ पक्के रंग की साड़ियाँ, पातल

★ हल्क, चादर, लुगड़े

—और

नित्यप्रति उपयोग में आन वाले वस्त्रों की प्राप्ति के लिये

मैनेजिंग एजेन्टम्

सर सरूपचंद हुकमचंद एन्ड-

कम्पनी, इंदौर

टेलीफोन नं १०६

तार का पता —NAND

स्वदेश की उत्पत्ति कीजिये

और

गृह-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दीजिये

दि नंदलाल भण्डारी मिल्स

लिमिटेड इन्दौर

१९२२ में रजिस्टर्ड

हमारी विशेषताएँ

सर्व प्रकार के कामों के लिये सर्व साधारण की रूचि का सस्ता
पर्यन्त उत्तम नित्य के व्यवहार योग्य, नये प्रकार का टिकाऊ
व्यवहारकर्ता का आवश्यकता पूर्ण के लिये

सब प्रकार का कपड़ा

कोटिंग्स टियरस, जूटा, ब्लेन और फेन्डी शर्टिंग, टायेशम
और नेपकिल धोतिया और साड़ियाँ, नो सूनी
और मजरी, प्लाकेटस और दरिया

शिल्प-चातुर्ष्य और परिश्रम हमकी सफलता की वृत्ति है

एजेन्डम

दि नंदलाल भण्डारी एण्ड संस

हेड ऑफिस
मिल्स बिल्डिंग

कपड़ा दूकान
८१, एम टी फ्लॉथ मार्केट

विनोद मिल्स लिमिटेड, उज्जैन

(दीपचन्द मिल्स सहित)

धीमत् सिंधिया नरेश, राजप्रमुख मध्यभारत संघ द्वारा सरक्षित
हमारी कई विशेषताएँ

१ कपड़ा—व्ययोगी श्रुता टिकाऊ, सभी प्रकार का। जिसे लोग
बड़े चाव से खरीदकर उपयोग में लाते हैं। एक बार अवश्य छात्री करें।

२ एक्सार्सेंट काटन वूल—खात्री में भारत सरकार द्वारा पसन्द
मध्यभारत, राजपूताना आदि प्रांतों के अस्पतालों में काम में लिया
जाता है।

३ लिट—इसे हमने अभी चालू किया है। पम्बई की शक्ति
होसिंग कंपनी न पसन्द करके अभी ज्यादा तागान में खरीदा है।

४ आर्टिफीशियल सिलक फ्लाथ—तरह तरह के पैन्थी और
रंग बिरंगे कपड़े मलपन, बडिया आरनड वॉयल व वाटन वगैरह तैयार
किये जाते हैं।

५ नरेन्द्र केमिकल वर्क्स—

इसमें ब्रोमेटेबल टेलो, साफ्ट डोप, टरकी रेड आइल, स्पॉन्ज व ग्रेन
पेस्ट विनोदकेमिनाइल आदि बनते हैं जो मिनों में काम आते हैं।

मध्यभारत में एकही फैक्ट्री है। अवश्य इसके माल का उपयोग करें।

६ वैलाश सोप फैक्ट्री—इसमें बडिया लिम का धातु न बढ़ाने व
कपड़ा धोने के काम का तैयार किया जाता है जो हीमन में श्रुत है।

७ भूपद्र आयर्न एण्ड मेटल वर्क्स—नरेन्द्र आइल मिल्स
—ये दोनों कारखाने भी बालू हैं।

उपरोक्त वस्तुओं को अवश्य एक बार
खरीद कर परीक्षा करें

दि विनोद मिल्स लिमिटेड उज्जैन

मैनेजिंग एजन्डम—मैसर्स विनादीराम शालचन्द बैकर

पूर्णतया भारतीय पू जी और श्रम के
उपयोग पर निर्भर

देश में अपना विशेषताओं के लिये विख्यात

दि गेंदालाल मिल्स लिमिटेड

जलगाव

को

महावीर जयन्ती के पुनीत अवसर पर

याद रखिये ।

★ कोटिंग शर्टिंग, काला लट्टा, धोती, साड़ी, खादी

★ दो सूती काली मलमल तथा विविध जात का कपड़ा

★ मिलने का एक मात्र स्थान

दि गेंदालाल मिल्स लिमिटेड

जलगाव [पूर्व खानदेश]

फोन नं ३५

तार कमल

शाखा

१४

बडजात्या विल्डिंग, बडा सराफा इन्दौर

फोन नं ४३२

तार 'बडजात्या'

भोजन शरीर के लिये जितना आवश्यक है उतना ही स्वास्थ्य और शरीर रक्षा के लिए वस्त्र भी आवश्यक है। जीवन की इस आवश्यकता को पूर्ण के लिए —

डी राजकुमार मि. लिमिटेड, इन्दौर

आपकी सेवा में सदैव प्रस्तुत है !

— यहाँ —

सब प्रकार की आवश्यकताओं के लिए जन साधारण की रुचि का सस्ता एवं उत्तम नित्य के व्यवहार योग्य टिकाऊ और सुन्दर सब प्रकार का कपड़ा समय और सुविधाजनक उपलब्ध हो सरेगा।

हमारी विशेषताएं—

हरक, चायल, सफेद रंगीन एवं प्रिन्टेड, लट्टा, मलेशिया, शर्टिंग, पक्क रंग की सुन्दर डिजाइनदार छौंटे आदि।

मैनेजिंग एजेंट्स.—

सर सरूपचंद हुकमचंद एन्ड कंपनी

कलॉथ शॉप - एम टी कलॉथ मार्केट, इन्दौर

तीर्थकर महावीर के पुनर्जन्म पर्व पर
हम आपका अभिनन्दन करते हैं
दैनिक जीवन के आवश्यक वस्तुओं के लिये

एक मात्र विश्वस्त स्थान—

दि हुकुमचन्द मिल्स लिमिटेड

इन्दौर

को याद रखिये

हमारी विशेषताएँ—

★ पक्के रंग की चोल

★ पक्के रंग का साडिया और पातल

★ पक्के रंग की सुन्दर डिजाइनों की छोटें

★ शर्टिंग, कोटिंग, टॉपेलस, मलमल, डरक आदि

भारतीय मिलों में उत्कृष्ट गुणार्थ, मजबूती और

आकर्षक डिजाइनों के लिए प्रख्यात

मेनेजिंग एजेंट्स—

सर हुकुमचन्द एण्ड मन्नालाल कम्पनी, इन्दौर

1

2

3

4

5

6

7

8